शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ

श्रीहरि:

निवेदन

हमारे पाठक पूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दकासे भलीभाँति परिचित हैं। इस पुस्तकमे उन्हींकी लिखी हुई शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ प्रकाशित की जा रही हैं। ये 'कल्याण'मे समय-समयपर प्रकाशित हो चुकी हैं। यद्यपि कहानियोमे केवल कला देखनेवालोको इनसे निराश होना पडेगा और उनके लिये ये लिखी भी नही गयी हैं, परतु जो गृहस्थ या साधक अपनी लौकिक-पारलौकिक उन्नति चाहते हैं और जो परमार्थपथके पथिक हैं, उनके लिये इन सरल भाषामे लिखी हुई सुन्दर कहानियोंमे उत्तम-से-उत्तम उपदेश तथा आदर्श प्राप्त हो सकते हैं। मेरी प्रार्थना है, सब लोग इन कहानियोसे लाभ उठाये।

प्रार्थी

हनुमानप्रसाद पोद्दार

श्रीहरिः

विषय-सूची

* श्रीपरमात्मने नम *

शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ

योगक्षेमका वहन

अनन्याश्चिन्तयन्तो मा ये जना. पर्युपासते ।
तेषा नित्याभियुक्ताना योगक्षेम वहाम्यहम् ॥
(गीता ९ । २२)

'जो अनन्यप्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वरको निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्कामभावसे भजते हैं, उन नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करनेवाले पुरुषोका योगक्षेम मैं स्वय प्राप्त कर देता हूँ ।'

कोई-कोई इस श्लोकका सर्वथा सकाम और निवृत्तिपरक अर्थ करते हैं और ससारयात्राकी कुछ भी चिन्ता न कर केवल भगवान्पर निर्भर रहते हुए भजन करना ही उचित मानते हैं । इसपर वे निम्नलिखित दृष्टान्त दिया करते हैं ।

एक ईश्वरभक्त गीताभ्यासी निवृत्तिप्रिय ब्राह्मण थे । वे अर्थको समझते हुए समस्त गीताका बार-बार पाठ करने एव भगवान्के नामका जप तथा उनके स्वरूपका ध्यान करनेमे ही अपना सारा समय व्यतीत करते थे । वे एकमात्र भगवान्पर ही निर्भर थे । जीविकाकी कौन कहे, वे अपने खाने-पीनेकी भी परवाह नहीं करते थे । उनके माता-पिता परलोक सिधार चुके थे । वे तीन भाई थे । तीनों ही विवाहित थे । वे सबसे बडे थे और दो भाई छोटे थे । दोनों छोटे भाई ही पुरोहितवृत्तिके द्वारा गृहस्थीका सारा काम चलाया करते थे । एक दिनकी बात है, दोनों छोटे भाइयोने बडे भाईसे कहा—'आप कुछ

समय जीविकाके लिये भी निकाला करे तो अच्छा रहे ।' बडे भाई बोले—'जब सबका भरण-पोषण करनेवाले विश्वम्भर भगवान् सर्वत्र सब समय मौजूद हैं तब अपनी जीविकाकी चिन्ता करना तो निरा बालकपन है । भगवान्ने गीताके नवम अध्यायके बाईसवें श्लोकमे स्वय योगक्षेमके वहनका जिम्मा लिया है—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मा ये जना पर्युपासते ।
तेषा नित्याभियुक्ताना योगक्षेम वहाम्यहम् ॥

इसलिये 'भाई ! हमलोगोको तो बस, अपने भगवान्पर ही निर्भर रहना चाहिये । वे ब्रह्मासे लेकर क्षुद्रातिक्षुद्र जीव-परमाणुतक—सभीका भरण-पोषण करते हैं । फिर जो उनके भरोसे रहकर नित्य-निरन्तर उन्हींका स्मरण-चिन्तन करता है, उसका योगक्षेम चलानेके लिये तो वे वचनबद्ध ही हैं । हमलोगोको तो नित्य गीताका अध्ययनाध्यापन और निरन्तर श्रद्धा-प्रेमपूर्वक भगवान्का भजन-स्मरण ही करना चाहिये ।'

दोनो भाइयोने कहा—'भाई साहेब ! आपका कहना तो ठीक है, पर जीविकाके लिये कुछ भी चेष्टा किये बिना भगवान् किसीको घर बैठे ही नही दे जाते ।' बडे भाईने विश्वासके साथ उत्तर दिया—'श्रद्धा-विश्वास हो तो घर बैठे भी भगवान् दे सकते हैं ।' दोनो छोटे भाइयोंने कुछ झुँझलाकर कहा—'भाई साहेब ! बाते बनानेमे कुछ नहीं लगता । हमलोग कमाकर लाते हैं तब घरका काम चलता है । आप केवल पडे-पडे श्लोक रटना और बडी-बडी बाते बनाना जानते हैं । आपको पता ही नहीं, हमलोग कितना परिश्रम करके कुछ जुटा पाते हैं । आप जब हमलोगोसे अलग होकर घर चलायेगे, तब पता लगेगा, तब हम देखेगे कि जीविकाके लिये प्रयत्न किये बिना आपका काम कैसे चलता है ।' बडे भाईने धीरजके साथ कहा—'भाई ! तुमलोग यही ठीक समझते हो तो बहुत आनन्द ।

मुझे अलग कर दो। मैं किसीपर भाररूप होकर नहीं रहना चाहता। भगवान् किस प्रकार मेरा निर्वाह करेगे, इसे वे खूब जानते हैं।' इसपर दोनो भाई निश्चिन्त-से होकर बोले—'बहुत ठीक है। कल ही हम सबको अपने-अपने हिस्सेके अनुसार बँटवारा कर लेना चाहिये।' बडे भाईने कहा—'जिस प्रकार तुमलोग उचित समझो, उसी प्रकार कर सकते हो, मेरी ओरसे कोई आपत्ति नहीं है। मैं तो तुमलोगोकी राजीमे ही राजी हूँ।'

दूसरे ही दिन दोनों भाइयोंने, जो कुछ सामान-सम्पत्ति थी, सबके तीन हिस्से कर दिये। ब्राह्मण भक्तके हिस्सेमें एक छोटा-सा कच्चा मकान, कुछ नकद रुपये और कुछ साधारण गहने-कपड़े तथा रसोईके बर्तन आदि आये। तीसरे हिस्सेकी यजमानोंकी वृत्ति भी उनके हिस्सेमे दे दी गयी। पर यजमानोका यह हाल था कि उनके पास यदि कोई पुरोहित चला जाता तो भले ही उनसे कुछ ले आता, घर बैठे पुरोहित महाराजको कोई याद नहीं करता।

इस प्रकार जब तीनों भाई अलग-अलग हो गये, तब उस ब्राह्मण भक्तने अपनी पत्नीसे कहा—'मेरे भाइयोंने हमलोगोंको जो कुछ भी दिया है, वह बहुत ही सतोषजनक है, किंतु अब हमें इस बातका पूरा ध्यान रखना चाहिये कि हम केवल भगवान्‌पर ही निर्भर करें। किसीके भी घर जाकर कभी भी याचना न करें और न किसीके देनेपर ही कुछ ग्रहण करें। भगवान् स्वय योगक्षेम वहन करनेवाले हैं, वे ही हमारा योगक्षेम चलायेंगे। भाइयोंने जो कुछ दिया है, अभी तो उसीसे काम चलाना चाहिये।'

ब्राह्मणी ईश्वरकी भक्त और पतिव्रता थी। उसने पतिकी बात बड़े आदरके साथ स्वीकार की। उसने सोचा—'अभी तो निर्वाहके लिये कुछ

हाथमे है ही । इसके समाप्त होनेके बाद स्वामी जैसा उचित समझेंगे, अपने-आप ही व्यवस्था करेगे ।'

वे भगवद्भक्त ब्राह्मण प्रात काल चार बजे ही उठते और शहरसे एक मील दूर एक तालाबपर जाकर शौच-स्नान करते । फिर सध्या-वन्दनके अनन्तर भगवान्‌की मानस-पूजा, जप, ध्यान करके सम्पूर्ण गीताका भावसहित अर्थको समझते हुए पाठ किया करते, इसके बाद दिनमें ग्यारह बजे घर लौटकर भोजनादि करते । भोजन करनेके पश्चात् पुन दोपहरमें एक बजे वापस वहीं तालाबपर जाकर जप, ध्यान, स्वाध्याय करते । फिर सायकाल चार बजे शौच-स्नान करके सध्या-वन्दन करते । तदनन्तर मानस-पूजा करके सत्-शास्त्रोंका श्रद्धापूर्वक स्वाध्याय करते । सूर्यास्तके बाद भगवान्‌के नामका जप और उनके स्वरूपका ध्यान किया करते थे । अन्तमे रातको आठ बजेके बाद घर लौटकर भोजन करते और फिर अपनी पत्नीसे सदालाप करके दस बजे शयन किया करते । उनकी साध्वी धर्मपत्नी भी दोनों समय पतिको भोजन कराकर स्वय भोजन करती और प्रतिदिन पतिको नमस्कार करना, उसकी सेवा-शुश्रूषा करना, उनकी आज्ञाका पालन करना तथा ईश्वरका भजन-ध्यान करना अपना परम कर्तव्य समझती थी । इस प्रकार दोनोंका समय बीतता था । प्रतिदिन व्यय तो होता ही था । कुछ दिनोमें उनके पास जो कुछ रुपये-पैसे थे, सब समाप्त हो गये । पत्नीने स्वामीसे कहा—'रुपये सब पूरे हो गये हैं ।' पतिने पूछा—'क्या गहने-कपडे भी समाप्त हो गये ?' पत्नीने कहा—'नहीं ।' इसपर ब्राह्मणीने सोचा—अभी गहने-कपडोंसे काम चलानेकी स्वामीकी सम्मति है । अतएव वह उन्हें बेचकर घरका काम चलाने लगी । पर वे गहने-कपडे भी कितने दिनके थे । वे भी समयपर शेष हो गये । फिर एक दिन पत्नीने कहा—'गहने-कपडे भी

सब समाप्त हो गये हैं ।' पतिने कहा—'कोई चिन्ता नहीं, अभी बर्तन-भाँड़े और मकान तो हैं ही ।' इससे ब्राह्मणीने समझा कि अभी स्वामीकी सम्मति मकान और बर्तनोसे काम चलानेकी है । उसने प्रसन्नतासे मकानको बेच दिया और वे दूसरे किरायेके मकानमें चले गये । कुछ दिन इससे काम चला । इसके बाद बर्तन-भाँडे भी बेच दिये, पर उनसे क्या होता । अन्तमे ब्राह्मणीके पास तन ढाँकनेके लिये एक साडी बची और ब्राह्मण देवताके लिये एक धोती और एक गमछा बचा । एक दिन ब्राह्मण देवता जब प्रात चार बजे जगलकी ओर जाने लगे, तब पत्नीने बडे विनीत-भावसे हाथ जोडकर निवेदन किया—'स्वामिन्! अब सब कुछ शेष हो गया है । घर तो किरायेका है, बर्तन-भाँडे भी सब समाप्त हो चुके हैं । केवल आपकी यह गीताजीकी पोथी, धोती, गमछा और मेरी एक साडी बची है । आज भोजनके लिये घरमें अन्न भी नहीं है । जो कुछ था, कल शेष हो गया । ब्राह्मणने इसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया और वे सदाकी भाँति जगलकी ओर चल दिये ।

सदाकी भाँति ही पडितजी तालाबपर गये और शौच-स्नानसे निवृत्त हो उन्होने सध्या-गायत्री-जप आदि नित्यकर्म किया । उसके अनन्तर जब वे गीताका पाठ करने लगे, तब उनके सामने वह अपना इष्ट श्लोक आया—

> **अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जना पर्युपासते ।**
> **तेषा नित्याभियुक्ताना योगक्षेम वहाम्यहम् ॥**
>
> (९।२२)

उस दिन पडितजी इस श्लोकको पढ़कर चौंक पडे और इसे पढते हुए मन-ही-मन विचार करने लगे कि 'मालूम होता है, इस श्लोकमें भगवान्के वचन नहीं हैं, शायद क्षेपक होगा । यदि यह

भगवान्‌का कथन होता तो भगवान् क्या मेरी सँभाल नहीं करते ? मैं तो सर्वथा उन्हींपर निर्भर हूँ। उन्होने आजतक मेरी सुधि जरा भी नहीं ली।' यह समझकर ब्राह्मणने उस श्लोकपर हरताल लगा दी और वे उस श्लोकको छोडकर गीताका पाठ करने लगे।

ब्राह्मण देवताके हृदयके इस भावको देखकर सर्वहृदयेश्वर भक्तवाञ्छाकल्पतरु भगवान् तुरत एक विद्यार्थीके रूपमे घोडेपर सवार होकर ब्राह्मणके घर उनकी धर्मपत्नीके पास पहुँचे और मिठाईका एक थाल भेंटमे रखकर पूछने लगे—'गुरुजी कहाँ हैं ?' ब्राह्मण-पत्नीने कहा—'यहाँसे एक मील दूर एक तालाब है, वे प्रतिदिन वहाँ शौच-स्नान और नित्यकर्मके लिये जाते हैं और लगभग ग्यारह बजे लौटते हैं, अभी दस बजे हैं, उनके आनेमे एक घटेकी देर है। आप कौन हैं और यह मिठाई किसलिये लाये हैं ?' विद्यार्थीने उत्तर दिया—'मैं पडितजीका शिष्य हूँ और गुरुजीकी तथा आपकी सेवाके लिये यह मिठाई लाया हूँ। इसे आप रख ले।' ब्राह्मण-पत्नीने कहा—'पडितजी न तो किसीको शिष्य ही बनाते हैं और न किसीकी दी हुई वस्तु ही लेते हैं। मुझको भी उन्होंने किसीकी वस्तुको स्वीकार न करनेकी आज्ञा दे रखी है। इसलिये मैं किसीकी दी हुई कोई वस्तु नहीं ले सकती। इसे आप ले जाइये।' विद्यार्थीने कहा—'आप जैसा कहती हैं, वैसा ही मैं भी मानता हूँ। वे किसीको भी शिष्य नहीं बनाते, यह बात भी सही है। मुझको छोड़कर उन्होंने न तो किसीको शिष्य बनाया है और न बनायेगे ही। मुझपर उनकी विशेष कृपा है, इसीसे मुझको उन्होंने शिष्य माना है। केवल मैं एक ही उनका शिष्य हूँ, इसके लिये मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ।' ब्राह्मण-पत्नीने कहा—'मैंने तो यह बात कभी नहीं सुनी कि उन्होंने आपको शिष्य बनाया है। मैं तो जानती हूँ कि उन्होंने किसीको

शिष्य बनाया ही नहीं है, फिर मैं इस बातको कैसे मान लूँ कि आप उनके शिष्य है। जो भी कुछ हो, मैं इस मिठाईको किसी हालतमे भी स्वीकार नहीं कर सकती। पंडितजीके लौटनेपर आप उन्हे दे सकते हैं।' विद्यार्थीने कहा—'अच्छा, यह थाली यहाँ रखी है और मेरा घोड़ा भी यहीं बँधा है। मैं लौटकर पंडितजीसे मिल लूँगा।' इसपर ब्राह्मण-पत्नीने उत्तर दिया—'आप इस थालीको वापस ले जाइये, पडितजीके आनेपर आप फिर ला सकते हैं। मैं पडितजीकी आज्ञाके बिना इसे किसी हालतमे नहीं रख सकती।' किंतु वे भगवान् तो विचित्र ठहरे। वे थालीको वहीं छोडकर चल दिये। चलते समय ब्राह्मण-पत्नीने पूछा—'अपना नाम-पता तो बतला दीजिये, जिससे पडितजीके आनेपर यह मिठाईकी थाली आपके घर वापस पहुँचा दी जाय।' विद्यार्थीने कहा—'वे मुझे जानते हैं। उनकी मुझपर अत्यन्त कृपा है, क्योंकि मैं उनका एक ही शिष्य हूँ। मेरे सिवा दूसरा कोई शिष्य है ही नहीं। आप कह दीजियेगा कि आज प्रात काल जिसके मुँहपर आपने हरताल पोती थी, वही शिष्य आया था। इससे वे समझ जायँगे।' इतना कहकर भगवान् चलते बने।

एक घटेके बाद पडितजी जगलसे वापस लौटे और घरमे प्रवेश करते ही देखा कि एक थाली मिठाईसे भरी रखी है। पडितजीने कुछ उत्तेजित-से होकर पूछा—'यह मिठाई कहाँसे आयी, किसने दी और क्यो रखी गयी?' ब्राह्मण-पत्नीने हाथ जोडकर विनयपूर्वक उत्तर दिया—'स्वामिन्! मैंने नहीं रखी है। एक विद्यार्थी जबरन् इसे रख गया। वह कहता था कि मैं गुरुजीकी सेवाके लिये लाया हूँ। इसपर भी मैंने स्वीकार नहीं किया। परतु वह जबरन् छोडकर चला ही गया।' ब्राह्मणने कहा—'तुम तो इस बातको जानती हो कि मैंने न तो आजतक किसीको शिष्य बनाया है और न बनाता ही हूँ।' पत्नीने

कहा—'यह बात सत्य है । मैंने भी उससे कहा कि न तो पडितजीने किसीको शिष्य बनाया है, न बनाते हैं और न बनायेंगे ।' इसपर उसने मेरी बातका समर्थन करते हुए कहा कि 'मैं इस बातको जानता हूँ । गुरुजीने मुझको छोडकर किसीको शिष्य नहीं बनाया और न बनायेगे । एकमात्र मैं ही उनका शिष्य हूँ । मुझपर उनकी विशेष दया है । इसीलिये मुझको उन्होने शिष्य स्वीकार किया है । मैं विश्वास दिलाता हूँ कि यह मेरी बात सच्ची माननी चाहिये ।' इसपर भी मैंने तो यही कहा कि 'मैंने यह कभी नहीं सुना कि आपको उन्होने शिष्य बनाया है । जो भी हो, मैं उनकी आज्ञाके बिना यह भेट नहीं रख सकती, परतु वह रखकर चल दिया ।' पडितजीने कहा—'उसका नाम-पता तो पूछना चाहिये था, जिससे उसके घर उसकी चीज वापस लौटा दी जाती ।' ब्राह्मण-पत्नीने कहा—'मैंने पूछा था, तब उसने यह कहा कि मुझको गुरुजी जानते हैं । आज प्रात काल ही उन्होने मेरे मुँहपर हरताल पोती है, मुझे इतनी ही देरमे वे थोडे भूल जायँगे । आप कह दीजियेगा कि जिसके मुँहपर आज प्रात काल हरताल पोती थी, वही आपका एकमात्र शिष्य भेंट दे गया है । बस, इतना कहकर वह चला गया और कह गया कि मिठाईकी थाली यहीं रखी है, मेरा घोडा भी यहीं बँधा हुआ है । मैं फिर आकर गुरुजीसे मिल लूँगा ।'

यह सुनते ही पडितजीको रोमाञ्च हो आया और वे गद्गद होकर बोले—'ब्राह्मणी ! तुम धन्य हो । वे तो साक्षात् भगवान् थे । तुम्हारा बडा सौभाग्य है, जो तुमको उनके साक्षात् दर्शन हुए । मैं अविश्वासी और हतभाग्य हूँ, इसीलिये मुझको उन्होने दर्शन नही दिये । मैंने एक दिन भी भूख सहन नहीं किया और अधीर होकर भगवान्के वचनोपर हरताल पोत दी । गीता स्वय भगवान्के मुखसे निकली हुई है,

उसपर हरताल पोतना सचमुच भगवान्‌के मुखपर ही हरताल लगाना है। आज गीताका पाठ करते समय जब यह श्लोक आया—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मा ये जना. पर्युपासते।
तेषा नित्याभियुक्तानां योगक्षेम वहाम्यहम्॥
(९।२२)

—तब मुझ अविश्वासीके मनमें भगवान्‌के वचनोपर शङ्का हो गयी कि यदि सचमुच ये भगवान्‌के वाक्य होते तो वे निश्चय ही मेरा योगक्षेम वहन करते, यह क्षेपक है। यह सोचकर मैंने उसपर हरताल पोत दी। मैं बड़ा ही नीच, पापी और अविश्वासी हूँ। मेरे हृदयमें यदि तनिक भी धैर्य होता तो मैं ऐसा नीच काम कभी नहीं करता। वे परम दयालु भगवान् तो सदा योगक्षेम चला ही रहे हैं। सब कुछ समाप्त होनेके साथ ही आ ही पहुँचे। हरताल लगानेके अपराधके कारण मैं उनके दर्शनसे वञ्चित रहा। तुम शुद्ध और अनन्य भक्त तथा पतिव्रता हो। इसलिये तुम्हें दर्शन दे गये। अब तो जबतक वे नहीं आते, तबतक मुझे चैन नहीं।' इसके बाद उनकी दृष्टि बाहरकी ओर गयी तो क्या देखते हैं कि घोडेपर भार लदा हुआ है। उन्होंने तुरत जाकर भार उतारा और उसे अंदर लाकर देखने लगे। उसमें लाखों रुपयोंके रत्न भरे थे, ब्राह्मण यह देखकर अपने कृत्यपर पश्चात्ताप करने लगे। वे पुन गद्‌गद हो गये और प्रेममें तन्मय होकर भागवतका यह श्लोक गाने लगे—

अहो बकी य स्तनकालकूट जिघासयापाययदप्यसाध्वी।
लेभे गतिं धात्र्युचिता ततोऽन्य क वा दयालु शरण व्रजेम॥*
(३।२।२३)

---

* आश्चर्यकी बात है कि पापिनी पूतनाने जिन श्रीकृष्णको मारनेकी इच्छासे उन्हें स्तनोंमें लगाया हुआ हलाहल विष पिलाया था, वह भी माताके योग्य

'मुझे धिक्कार है कि ऐसे दीनबन्धु, पतितपावन, सबका धारण-पोषण करनेवाले विश्वम्भर प्रभुपर मैंने झूठा दोष लगाकर अपनेको कलङ्कित किया। मैं तो अर्थका दास हूँ। यदि मैं सचमुच प्रभुका दास होता तो मुझे भोजनाच्छादनकी चिन्ता ही क्यों होती और क्यों भगवान् मुझे सतुष्ट करनेके लिये यह रत्न-राशि दे जाते। मैं वास्तवमें यदि भगवान्के तत्त्व-रहस्यको जानता, मेरा उनमें सच्चा प्रेम होता और मेरे मनमे अर्थकी कामना न होती तो वे मुझे ये रत्न देकर क्यो भुलाते।' यों कहते-कहते ब्राह्मण आनन्दमुग्ध हो गये।

बहुत देर होते देखकर ब्राह्मणीने कहा—'भगवान्का दिया हुआ प्रसाद तो पा लें।' पडितजी बोले—'जब भगवान् यह कह गये हैं कि हम आयेंगे, तब अब तो उनके आनेपर ही प्रसाद पाऊँगा।' सायंकाल हो गया, पर भगवान् नहीं आये। तब ब्राह्मणीने फिर कहा—'अब तो प्रसाद पा ले।' पडितजी कब माननेवाले थे, उन्होंने फिर वही बात कह दी। अब रात्रिके दस बज गये, शयनका समय हो गया और भगवान् नहीं आये, तब ब्राह्मणीने पुन विनयपूर्वक कहा—'प्रसाद तो पा लीजिये।' ब्राह्मणदेवताने फिर भी प्रसाद नहीं पाया और दोनों बिना कुछ खाये ही सो गये।

रातके ग्यारह बजे थे। दरवाजा खटखटाते हुए किसीने बड़े ही मधुर स्वरोंमें पुकारा—'गुरुआनीजी ! गुरुआनीजी ! दरवाजा खोलिये।' ब्राह्मण-दम्पतिको अभी नींद तो आयी ही नहीं थी। सुमधुर स्वर तथा 'गुरुआनीजी' सम्बोधन सुनकर ब्राह्मणी चौंक पडी और आनन्दविह्वल होकर बोली—'स्वामिन् ! लीजिये, आपके भगवान् आ गये हैं।' ब्राह्मणने तुरत दौडकर दरवाजा खोला और वे भगवान्के चरणोंपर गिर

उत्तम गतिको प्राप्त हुई, फिर उन भगवान्को छोड़कर हम और किस दयालुकी शरणमें जायँ।

पडे । भगवान्‌ने उनको उठाकर अपने हृदयसे लगा लिया । उस समय पंडितजीकी बड़ी विचित्र दशा थी । उनका शरीर रोमाञ्चित था, नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह रही थी, हृदय प्रफुल्लित था और वाणी गद्‌गद थी । फिर भी वे किसी तरह धीरज धरकर बोले—'नाथ ! मैं तो एक अर्थका दास हूँ । मुझ-जैसे पामरपर भी जो आपने इतनी कृपा की, इसमें आपका परम कृपालु स्वभाव ही हेतु है । यदि मेरे भाव और आचरणोंकी ओर ध्यान दिया जाय तो आपके दर्शन तो दूर रहे, मुझे कहीं नरकमें ठौर नहीं मिलनी चाहिये । मैंने आप-जैसे सर्वथा निर्दोष महापुरुषपर दोष लगाया—मुझ-जैसा अर्थकामी नीच कोई शायद ही होगा । मैं तो अर्थके लिये ही आपको भजता था, तभी तो आपने मेरे सतोषके लिये ये रत्न दिये हैं । मैं बडा भारी सकामी हूँ, इसीलिये तो मैंने आपको सासारिक योगक्षेम चलानेवाला ही समझा, नहीं तो मैं पारमार्थिक योगक्षेमकी ही कामना करता । जो निष्कामभावसे केवल मात्र आपपर ही निर्भर हैं, वे तो इस योगक्षेमको भी नहीं चाहते; किंतु आप तो बिना उनके चाहे ही उनका योगक्षेम वहन करते हैं । मुझ-जैसे अभागेमें ऐसी श्रद्धा, प्रेम, विश्वास और निर्भरता कहाँ, जो आप-जैसे महापुरुषके हेतुरहित अनन्य-शरण होता ।'

भगवान् बोले—'इसमें तुम्हारा कोई दोष ही नहीं है । तुम तो मुझपर ही निर्भर थे । मेरे आनेमे जो विलम्ब हुआ, यह मेरे स्वभावका दोष है, पर अभीतक तुमने भोजन क्यों नहीं किया ?' पडितजीने कहा—'जब आप कह गये थे कि मैं फिर आकर मिलूँगा, तब बिना आपके आये मैं कैसे भोजन करता । आप भोजन कीजिये, उसके बाद हमलोग भी प्रसाद पायेगे ।' भगवान्‌ने कहा—'नहीं-नहीं चलो हमलोग एक साथ ही भोजन करें ।' फिर ब्राह्मण-पत्नीने भगवान्‌का

सकेत पाकर दोनोको भोजन कराया । ब्राह्मणदेवताने अत्यन्त प्रेम-विह्वल होकर प्रसाद पाया । भोजनके बाद भगवान् बोले—'तुम्हारी जो इच्छा हो, सो माँग लो, तुम्हारे लिये कुछ दुर्लभ नहीं है ।' ब्राह्मणने कहा 'जब आप स्वय ही पधार गये, तब अब भी माँगना बाकी ही रहा क्या ? नाथ ! मैं तो यही चाहता हूँ कि अब तो मेरे मनमें योगक्षेमकी भी इच्छा न रहे और केवल आपमे ही मेरा अनन्य विशुद्ध प्रेम हो ।' भगवान् 'तथास्तु' कहकर अन्तर्धान हो गये ।' इसके बाद ब्राह्मण-पत्नीने भी प्रसाद पाया ।

इधर जबसे उन छोटे भाइयोंने अपने ज्येष्ठ भ्राता भगवद्भक्त ब्राह्मणको अलग कर दिया था, तबसे वे उत्तरोत्तर नितान्त दरिद्री और दु खी होते चले गये । उनकी इतनी हीन दशा हो गयी कि न तो उनको कहींसे कुछ उधार ही मिलता था और न माँगनेपर ही । जब उन्होने सुना कि हमारे भाई इतने धनी हो गये हैं कि उनके द्वारपर सदा याचकोंकी भीड लगी रहती है, तब वे भी अपने भाईके पास गये । परम भक्त पडितजीने भाइयोंको आये देखकर उन्हे हृदयसे लगा लिया और उनकी कुशल-क्षेम पूछी । उन्होने उत्तरमें कहा—'आप-जैसे सज्जन पुरुषसे अलग होकर हमे कुशल कहाँ ? हम तो मुँह दिखाने लायक भी नहीं हैं । फिर भी आप हमलोगोंपर दया करके प्रेमसे मिलते हैं, यह आपका सौहार्द है ।' बड़े भाईने कहा—'नहीं-नहीं भैया ! ऐसा मत कहो । हम तीनो सहोदर भाई हैं । हमलोग कभी अलग थोड़े ही हो सकते हैं । यह तो एक होनहार थी । हमलोग जैसे प्रेमसे पहले रहा करते थे, अब भी हमें वैसे ही रहना चाहिये । ससारमें सहोदर भाईके समान अपना हितैषी और प्रेमी कौन है ? तुमलोगोंको लज्जा या पश्चात्ताप न करके पूर्ववत् ही प्रेम करना चाहिये । यह जो कुछ ऐश्वर्य देखते

हो, इसमे भैया। मेरा क्या है। यह सब श्रीभगवान्‌की विभूति है। जो कोई भी भगवान्‌पर निर्भर हो जाता है, भगवान् सब प्रकारसे उसका योगक्षेम वहन करते हैं। जैसे बालक माता-पितापर निर्भर होकर निश्चिन्त विचरता है और माता-पिता ही सब प्रकारसे उसका पालन-पोषण करते हैं, उसी प्रकार, नहीं-नहीं, उससे भी बढकर भगवान् अपने आश्रितका पालन-पोषण और संरक्षण करते हैं। यही क्या, वे तो अपने-आपको ही उसके समर्पण कर देते हैं। अत तुमलोगोंको—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मा ये जना पर्युपासते।
तेषा नित्याभियुक्ताना योगक्षेम वहाम्यहम्॥

(गीता ९।२२)

—इस श्लोकमें कही हुई बातपर विश्वास करके नित्य-निरन्तर भगवान्‌का ही चिन्तन करना चाहिये तथा अर्थ और भावको समझकर नित्य श्रीगीताका अध्ययनाध्यापन करना चाहिये।'

इसके बाद वे दोनों भाई बडे भाईके साथ रहकर उनकी आज्ञाके अनुसार नित्य-निरन्तर जप, ध्यान तथा गीताका पाठ करने लगे एव थोड़े ही समयमें भगवान्‌की भक्ति करके भगवत्कृपासे भगवान्‌को प्राप्त हो गये।

यह कहानी कहाँतक सच्ची है, इसका पता नहीं है, किंतु हमें इससे यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि भगवान्‌पर निर्भर होनेपर भगवान् योगक्षेमका वहन करते हैं। अत हम भी इसपर विश्वास करके भगवान्‌पर निर्भर हो जायँ। सबसे उत्तम बात तो यह है कि नित्य-निरन्तर भगवान्‌का निष्कामभावसे चिन्तन करना चाहिये। योगक्षेमकी भी इच्छा न करके भगवान्‌में केवल अहैतुक विशुद्ध प्रेम हो, इसीके लिये प्रयत्न करना चाहिये। किंतु यदि योगक्षेमकी ही इच्छा हो तो सच्चे—पारमार्थिक योगक्षेमकी इच्छा करनी चाहिये। अप्राप्तकी

प्राप्तिका नाम 'योग' है । और प्राप्तकी रक्षाका नाम 'क्षेम' है । पारमार्थिक योगक्षेमका अभिप्राय यह है कि परमात्माकी प्राप्तिके मार्गमें जहाँतक हम आगे बढ चुके हैं, उस प्राप्त साधनसम्पत्तिकी तो भगवान् रक्षा करते हैं और भगवान्की प्राप्तिमे जो कुछ कमी है, उसकी पूर्ति भगवान् कर देते हैं । ऐसा भगवान्ने आश्वासन दिया है । इस प्रकार समझकर और इसपर विश्वास करके भगवान्पर निर्भर एव निर्भय हो जायँ, भगवच्चिन्तनके सिवा और कुछ भी चिन्ता न करें ।

जो लोग सासारिक योगक्षेमके लिये भगवान्को भजते हैं, वे भी न भजनेवालोकी अपेक्षा बहुत उत्तम हैं, क्योंकि भगवान्ने अर्थार्थी, आर्त आदि भक्तोको भी उदार—श्रेष्ठ बतलाया है—**'उदाराः सर्व एवैते'** (गीता ७ । १८)—और ज्ञानी निष्काम अनन्य भक्तको तो अपना स्वरूप ही बतलाया है, क्योंकि उस निष्कामी ज्ञानीको एक भगवान्के सिवा अन्य कोई गति है ही नहीं ।

अत हमको उचित है कि हम भगवान्के निष्काम ज्ञानी अनन्य भक्त बनें, क्योंकि ऐसा भक्त भगवान्को अत्यन्त प्रिय है । भगवान्ने कहा है—

तेषा ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमह स च मम प्रिय ॥

(गीता ७ । १७)

'उन भक्तोमें नित्य मुझमें एकीभावसे स्थित अनन्यप्रेम-भक्तिवाला ज्ञानी भक्त अति उत्तम है, क्योंकि मुझको तत्त्वसे जाननेवाले ज्ञानीको मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और वह ज्ञानी मुझे अत्यन्त प्रिय है ।'

निष्कामता

रामू और गोपाल दोनों एक ही गॉव रामपुराके रहनेवाले थे। दोनो ही कहार थे। गोपाल इच्छानगरी-नरेशके प्रधान मन्त्रीके पेशकारके घर बर्तन मॉजने, झाड़ू लगाने आदिका काम करता था। रामूसे उम्रमें बडा था, पर सम्बन्धके नाते भाई था। रामूका पिता गॉवमें प्रतिष्ठित माना जाता था। रामू कहारके घर पैदा हुआ था, पर वह बडा ही बुद्धिमान् था और उसमें सात्त्विक गुणोकी स्वाभाविक ही बहुतायत देखी जाती थी। रामूके हृदयमे भगवद्भक्ति, विनय, सतोष और निष्कामता आदि गुणोका भी विकास हो गया था। उसका चेहरा भी राजकुमारका-सा सुन्दर था। गॉवके सभी लोग उससे प्यार करते थे। उसने पद्रह वर्षकी उम्रमे ही गॉवके वयोवृद्ध प० रमाकान्तजीसे, जो बडे सयमी, सदाचारी तथा भगवद्भक्त विद्वान् थे और नगरकी ऊँची अध्यापकीको छोडकर नि स्वार्थभावसे गॉवके लडकोंको पढाते थे; अच्छे विद्याभ्यासके साथ ही बहुत-से सद्गुण भी प्राप्त कर लिये थे।

रामूका गॉव रामपुरा इच्छानगरी राजधानीसे थोडी ही दूरपर था। एक दिन तडके ही रामू नहा-धोकर घरसे चल दिया और पौ फटते-फटते इच्छानगरी जा पहुँचा। उसने खोजते-खोजते गोपालके घर पहुँचकर सहसा गोपालके चरण पकड लिये। गोपाल उस समय बिछौनेसे उठा ही था। रामूको इस तरह देखकर वह चकित हो गया और आह्लाद तथा आश्चर्यसे उसके चेहरेकी ओर देखने लगा।

'भैया। तुम धन्य हो', रामूने पैर पकडे हुए ही कहा। 'अरे भैया। तुम आये, बडा अच्छा किया। गाँवमें सब कुशल तो है? पर तुमने मेरे पैर क्यों पकड लिये? तुम तो वैसे मेरे भाई हो।' गोपाल पीछे हटते हुए एक साँसमे कह गया।

'भैया। तुम्हारी महिमा मैं क्या कहूँ। बस, तुम धन्य हो।' रामूने गद्गद वाणीसे फिर कहा।

'भैया। वैसे तो मैं तुम्हारे घरका आदमी हूँ, मेरा काम देखो तो मैं महाराजा साहेबके दीवानके पेशकारके यहाँ बर्तन माँजनेवाला नीचे दर्जेका नौकर हूँ, मैं धन्य कैसे हो गया?' गोपालने जिज्ञासासे कहा।

'भैया। इसीलिये तो तुम धन्य हो। तुम जानते हो, हमारे महाराजा उच्चकोटिके महापुरुष हैं। वे अनन्यभक्त, ज्ञानी और योगी महात्मा हैं।' रामूने गोपालके पैरोसे चिपटे हुए ही कहा।

'पर इससे क्या हुआ? इन सद्गुणोंसे सम्पन्न तो महाराजा हैं न?' पैर छुडाते हुए गोपालने कहा। 'मुझमें तो कोई गुण नहीं है।'

रामूने आदर और प्रेमभरे शब्दोमें कहा—'भाई। ऐसे महापुरुष महाराजाके दीवानके पेशकारकी नौकरी मिलना क्या कोई साधारण बात है? मुझे तो ऐसी नौकरी मिल जाय तो मैं अपने जीवनको सफल समझूँ, बल्कि तुम्हारी ही सेवाका अवसर मिल जाय तो भी मेरा जीवन धन्य हो सकता है।' यों कहकर वह गोपालके मुँहकी ओर देखने लगा।

गोपालपर रामूके शब्दोंका बडा प्रभाव पडा। गोपालने कहा—'भैया। पेशकार साहबको तो आदमीकी जरूरत ही थी, वे मुझसे कह रहे थे। तुम आ गये और तुम चाहते भी हो, अत आज ही मैं तुम्हे काम दिलवा दूँगा।

× × × ×

रामू पेशकारके यहाँ बडी लगनसे काम करने लगा था । महीना पूरा होनेपर गोपालके हाथ भेजे हुए वेतनको जब उसने नहीं लिया, तब पेशकारने उसे बुलाकर कहा—

'तुम अत्यन्त उत्साह, श्रद्धा, प्रेम तथा तत्परतासे दिन-रात काम करते हो । काम भी पहले नौकरसे दुगुने कर लेते हो । इतना काम तो कोई नौकर करता ही नहीं । फिर भी गत मासमें तुमने वेतन नहीं लिया, इससे मैं बहुत लज्जित हूँ । मैं समझता हूँ, तुम्हे दस रुपये मासिक बहुत कम हैं । तो अब तुम जितना कहो, उतने ही रुपये प्रतिमासके लिये निर्धारित कर दूँ ।'

रामूकी प्रसन्नताकी सीमा न थी । उसे शुद्ध, सात्त्विक एव दिव्यगुणसम्पन्न नरपतिके दीवानके पेशकारके पास रहनेका स्थान जो मिल गया था । इसी कारण वह अहता, ममता तथा आसक्ति और स्वार्थको त्यागकर अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिसमन्वित हृदयको लेकर निष्कामभावसे सेवा कर रहा था । पेशकार उससे अत्यन्त सतुष्ट हो गया था । रामूने पेशकारकी बात सुनकर अत्यन्त विनयसे उत्तर दिया—'मेरे रुपये न लेनेका यह कारण नहीं था कि वेतन कम है ।'

पेशकार चकित था । उसे रामूकी बातपर सहसा विश्वास नहीं हुआ । उसने पूछा—'तो फिर इतना अधिक श्रम किसलिये करते हो ?'

'आप अच्छी तरह जानते हैं, हमारे महाराजा उच्चकोटिके महापुरुष हैं । वे योगी, ज्ञानी, ईश्वरभक्त और साक्षात् महात्मा हैं । आप उनके दीवानके पेशकार हैं । यह मेरा सौभाग्य है कि मुझे आपकी चाकरीका अवसर प्राप्त हुआ है । तनख्वाह इससे बढकर और क्या होगी ?' रामूने नतमस्तक होकर उत्तर दिया ।

'राजा साहेब तो तुम जैसा कहते हो, वैसे ही हैं, पर मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ । मुझमे वे कोई भी गुण नहीं है जो उनमें विद्यमान

है । मेरी चाकरीसे तुम्हें क्या लाभ है ?' पेशकारने उत्सुकतासे प्रश्न किया ।

'आप है तो उन्हींके दीवानके पेशकार । मेरे भाग्यमे आप-जैसे महापुरुषोकी सेवा कहॉ । भगवान्‌की बात तो दूर रही, उनके आश्रित भक्तोके दासानुदासोके दासानुदासकी सेवा प्राप्त कर लेना भी बहुत बडा सौभाग्य है, क्योंकि उनके सम्पर्कसे कभी न कभी भगवदनुरागी महापुरुषोंके दर्शन प्राप्त हो सकते है । इसी तरह आपकी सेवा करते-करते मुझे कभी दीवानजीके भी दर्शन हो जायँगे, जो उन भगवद्भक्त राजाके निकटतम सम्पर्कमे रहा करते हैं ।' रामूने सरलतासे मनकी सच्ची बात कह दी ।

'दीवानके दर्शनकी कौन बात है, उनका दर्शन तो मैं तुम्हें कल ही करवा सकता हूँ ।' पेशकार रामूकी पवित्र भावनापर मुग्ध हो गये थे । उन्होने कहा—'दीवानजी प्रातःकाल साढे आठ बजे न्यायालयमें आते हैं और मैं वहॉ आठ बजे चला जाता हूँ, तुम नौ बजेतक एक गिलास चाय और जल लेकर वहॉ आ जाना । और वेतनके लिये जितने रुपये कहो, तुम्हारे घर भेज दूँ ।'

मुझे रुपयेकी आवश्यकता नहीं है । घरका काम चल जाता है । मुझे तो श्रीदीवानजीके दर्शनसे ही सब कुछ मिल जायगा ।' रामूने अनुनय-विनयसे रुपये लेना अस्वीकार कर दिया ?

पेशकार रामूकी ओर देख रहे थे । वे उसके स्वभावकी मन-ही-मन प्रशसा करने लगे ।

× × × ×

गद्दीपर मसनदके सहारे बैठे हुए दीवानने दरवाजेकी ओर देखा । एक सुन्दर अनजान नौजवान हाथमे गिलास लिये बडी मुग्धदृष्टिसे एकटक उनकी ओर देख रहा था, जैसे कोई भगवान्‌का दर्शन कर रहा हो ।

दीवानने कई बार देखा, उसकी पलक झपती ही न थी । वह अतृप्त नेत्रोसे दीवानकी ओर देख ही रहा था ।

'यह कौन है और यहाँ क्यो खड़ा है ?'—दीवानने पेशकारसे पूछा ।

'श्रीमान्! यह आपका नौकर है । आज मैं चाय पीकर नहीं आ सका था तो यह यहीं लेकर आ गया ।'—पेशकारने जवाब दिया ।

'अच्छा, पहले चाय पी लो!'—दीवानने कहा ।

पेशकारने चाय पी और फिर काममें जुट गये । पर दीवानपर रामूकी परम मुग्ध और आकर्षक प्रेमभरी दृष्टिका प्रभाव पड चुका था । वे रह-रहकर बरबस रामूकी ओर देख लेते थे । रामूने चायके बर्तन माँज-धोकर वहाँ झाड़ू लगा दिया । फिर दीवानजीके जूते साफ करनेमें जुट गया । साथ ही वह रह-रहकर दीवानकी ओर श्रद्धा और प्रेमभरी दृष्टिसे देख भी लेता था ।

'यह लड़का तो बड़े प्रेम और उत्साहसे बिना कहे ही काम करता है और सो भी कितनी फुर्ती और सफाईके साथ! क्या देते हो इसे ?'—दीवानने पेशकारसे पूछा ।

'श्रीमान्! ... यह काम तो खूब और बहुत सुन्दर ढंगसे करता है, पर लेता कुछ भी नहीं ।'

आश्चर्यचकित होकर दीवानने रामूको तुरत पास बुला लिया और वे पूछ बैठे—'तुम बिना कुछ लिये ही बड़े प्रेमसे काम करते हो, इसका कारण बता सकोगे ?'

'सरकार! सिर्फ आपके दर्शनके लिये । आज मैं धन्य हूँ ।' रामूने दबी जबानसे कह दिया ।

'मुझमें कौन-सी ऐसी बात है भैया ?'—दीवानने आकर्षित होकर रामूसे पूछा ।

'दीवान साहब! आप तो जानते ही हैं कि हमारे महाराजा साहेब बहुत

उच्चकोटिके महापुरुष हैं । वे योगी, ज्ञानी, भक्त और महात्मा हैं । आप ऐसे पवित्रात्मा नरेशके दीवान हैं । आप-जैसे पुरुषोंका दर्शन होना कोई साधारण बात है । जिनके बडे भाग्य होते हैं, उन्हींको आप-जैसे पुरुषोका दर्शन मिलता है ।'—रामूने बडे प्रेम और विनयसे कहा ।

'जब तुम्हारी ऐसी भावना है, तब तुम हमारे ही पास रह सकते हो ।' दीवानपर प्रेमका जादू चल गया था ।

'रामू आश्चर्यचकित था । अत्यन्त मुदित होकर उसने कहा—'आपके चरणोंका सामीप्य पाकर मैं अपनेको परम सौभाग्यशाली समझूँगा ।'

'भाई । इसे तो मैं अपने पास रखना चाहता हूँ ।'—दीवानने पेशकारकी ओर मुँह फेरकर कहा ।

आप प्रसन्नतापूर्वक रख ले ।'—पेशकारने स्वीकृति दे दी ।

× × × ×

'मेरे पास काम करते तुम्हे बहुत दिन बीत गये और जिस प्रेम तथा उत्साहसे तुम काम करते हो, वैसे साधारण नौकर तो कर ही नहीं सकते, परतु आजतक तुमने कुछ भी नहीं लिया, इससे मुझे बडा सकोच हो रहा है । वेतन न सही, पर पारितोषिकके रूपमे कुछ अवश्य स्वीकार कर लो । दो-चार सौ जितने कहो, मैं तुम्हारे घर भिजवा दूँ ।'—दीवानने बडे स्नेहसे कहा ।

'घरवालोंका काम चल जाता है, सरकार । रुपयेकी आवश्यकता नहीं है ।' रामूने श्रद्धालु भक्तकी भाँति उत्तर दिया ।

'रुपये नहीं भेजते तो और कोई चीज भेज दो । मैं तुम्हारी सेवाका बहुत आभार मानता हूँ । कुछ तुम्हारा प्रत्युपकार करना चाहता हूँ ।'—अनुरोधपूर्वक दीवानजीने कहा ।

ऐसा कहकर आप मुझे लज्जित न करें । आपकी सेवा ही सबसे बढकर मेरा उपहार है, क्योंकि आप एक महान् पुरुषके दीवान और

देशके परम सेवक हैं । मेरे लिये तो आपके दर्शन भी दुर्लभ थे । आपने मुझे सेवाका सौभाग्य देकर सदाके लिये ही ऋणी बना लिया है । आपकी सेवा करते-करते कभी मेरा परम सौभाग्य होगा तो आपकी कृपासे महाराजके भी दर्शन हो जायँगे ।'—रामूने मनकी बात व्यक्त कर दी ।

'राजा साहेबके दर्शनकी क्या बात है, वह तुम्हे कल ही करवा सकता हूँ । मैं दरबारमें बारह बजे जाता हूँ और राजा साहेब वहाँ एक बजे आते हैं । कल मगलवारका व्रत है । तुम जानते हो मैं उस दिन बिना खाये ही जाया करता हूँ और मेरे लिये फलाहार वहीं पहुँचाया जाता है । तुम दो बजे फलाहार लेकर वहाँ आ जाना, पर कुछ रुपये अवश्य घरपर भिजवा दो ।'—दीवानने आग्रह किया ।

'मैं आपका चिरऋणी हूँ, सरकार ! मुझे रुपया नही चाहिये ।' रामूका मस्तक श्रद्धासे नत हो गया था ।

× × × ×

'राजाकी दृष्टि आनन्दसमुद्रमें निमग्न रामूपर पड गयी थी । उन्होंने उसमे विलक्षण आनन्दका अनुभव किया । वह एकटक राजा साहेबकी ओर देख रहा है और हर्षोत्फुल्ल हो रहा है, इसे उन्होने अच्छी तरह समझ लिया था । दीवानसे उन्होंने पूछा—'यह कौन है और यहाँ किसलिये खडा है ?'

'श्रीमान् ! यह आपका सेवक है । आज मगलवार है, इससे फलाहार लाया है ।'—दीवान बोले ।

अच्छा, तुम पहले फलाहार कर लो ।'—राजाने आज्ञा दी ।

दीवानने अलग जाकर फलाहार किया और फिर लौटकर अपने कार्यमें लग गये । रामू जूठे बर्तन साफ करके दीवान और महाराजके जूते साफ करने लगा । साथ ही वह महाराजकी ओर देख-देखकर आनन्दातिरेकसे विह्वल होता जा रहा था । वह मन्त्रमुग्धकी भाँति हो गया था । उसकी इस दशाका अनुभव राजाने भी किया ।

'यह लडका बडा उत्साही मालूम होता है । इसे वेतन क्या दिया जाता है ?'—राजाने दीवानसे प्रश्न किया ।

'सरकार ! काम तो यह बडी ही तत्परता तथा प्रेमोत्साहसे करता है, परतु वेतन आग्रह करनेपर भी कुछ नहीं लेता ।'—दीवानने जवाब दिया ।

महाराजको बडा आश्चर्य हुआ । उन्होंने रामूको बुलाकर पूछा—'तुम बिना कुछ लिये ही इतना प्रेम और उत्साहसे काम करते हो, इसका क्या कारण है ?'

'सरकार ! बिना कुछ लिये ही कैसे ? इन्हींकी तो कृपा है, जो मैं आज सरकार-जैसे अप्रतिम महापुरुषके दर्शन करके कृतकृत्य हो गया । मेरा अहोभाग्य है, जो मैं आज सरकारके दर्शन कर रहा हूँ ।' रामू गद्‌गद हो गया था ।

'तुम अपनेको कृतकृत्य मानते हो, ऐसी कौन-सी बात है ?'

सरकार महापुरुष हैं, सरकार-जैसे योगी, ज्ञानी, भक्त और महात्माके दर्शन बहुत ही दुर्लभ हैं और बडे ही भाग्यसे होते हैं । आज सरकारके दर्शन करके मैं परम धन्य हो गया हूँ । मेरा जन्म आज सफल हो गया । सरकारकी कृपासे मैं आज सचमुच कृतार्थ हो गया !' रामूने महाराजके चरण पकड लिये ।

'यदि तुम्हारी इच्छा हो तो मेरे साथ सदा रह सकते हो ।' नरपति प्रभावित हो चुके थे ।

'यह तो मेरे लिये परम सौभाग्यकी बात है । इससे बढकर मेरे लिये और हो ही क्या सकता है ।' रामूका मस्तक नरपतिके चरणोपर था ।

'इस बच्चेको मेरे पास रहने दो !'—राजाने दीवानसे कह दिया । उनके हृदयमें स्नेह उमडने लगा । दीवानने सिर झुका लिया ।

× × × ×

'मैं तुम्हारी सेवासे बहुत सतुष्ट हूँ, परतु न रुपये लेते हो और न

ही कुछ घरपर भिजवाते हो । मैं तुम्हारा आभारी हूँ, तुम्हारी जो कुछ इच्छा हो कहो, मैं तुम्हारा कुछ भी अभीष्ट हो, पूरा करना चाहता हूँ ।'—राजा बोले ।

'महाराज जब इस नगण्य दासपर संतुष्ट हैं, तब मैं सब कुछ पा गया । मुझे रुपयेकी आवश्यकता नहीं है ।'—रामूने उत्तरमे कहा ।

'मैं तुम्हारा आभार मानता हूँ । मेरे सतोषके लिये तुम्हें कुछ-न-कुछ लेना ही होगा ।'—नरेशने पुन आग्रहपूर्वक कहा ।

'यों कहकर मुझे लज्जित न करें । मुझे तो सरकारकी सेवाके सामने भौतिक वस्तुएँ अत्यन्त तुच्छ प्रतीत होती हैं । इसके अतिरिक्त मुझे और कुछ नहीं चाहिये । इसपर भी यदि आप आग्रह करते हैं तो फिर मैं जो माँगूँ, आपको वही देना होगा ।'—रामूने मधुर शब्दोमे कहा ।

'निश्चय ही तुम जो माँगोगे मैं दे दूँगा ।' नरेशने निश्चित कर लिया था—इसके माँगनेपर समस्त राज्य भी प्रसन्नतापूर्वक दे दूँगा ।

'मैं सदा-सर्वदा सरकारके चरणोंके साथ रह सकूँ । मुझे सरकार कभी एक क्षणके लिये भी अपनेसे अलग न करें ।' श्रद्धा-विगलित हृदयसे रामू महाराजके चरणोंमें लोट गया ।

'इसमे [illegible]-सी बात है । तुम तो अधिक-से-अधिक मेरे साथ रहते ही हो । कुछ और माँगो ।'

'बस, मैं यही चाहता हूँ ।'

'मुझे कोई आपत्ति नहीं है । तुम प्रसन्नतापूर्वक मेरे साथ रहो ।'

× × × ×

'रात्रिमें शयनकक्षमे मेरे पीछे कैसे ?'

'महाराज । नित्य समीप रहनेकी आज्ञा मिल चुकी है ।' जोडकर रामूने तुरत जवाब दिया ।

'आओ ।'—महाराजने कहा ।

'तुम्हारे कोई पुत्र नहीं था। अब इसे तुम्हारी सेवाके लिये पुत्ररूपसे लाया हूँ।'—राजाने महारानीसे कहा।

'बहुत अच्छा!' रानीने रामूकी ओर देखा। उसके मनोहर मुखमण्डलको देखकर उनके नेत्रोंसे स्नेहाश्रुओंकी बूँदें टपक पड़ीं। वात्सल्य उमड आया। रामू मन्त्रमुग्ध शिशुकी भाँति महारानीकी ओर देख रहा था।

× × × ×

'अबतक तो यह काम-काज देख रहा था, पर अब सब कागजातपर आजसे यही सही किया करेगा और इसीकी सही मेरी सही समझी जायगी।' राजाने दीवानसे कह दिया। वे रामूकी सेवासे अत्यन्त संतुष्ट थे। रामू तीक्ष्णबुद्धि था और था महाराजका अनन्य सेवक एव उनके गुणोंको अपनेमें सहज ही धारण करनेवाला। अत थोडे ही दिनोंमें उसने बडी योग्यता प्राप्त कर ली थी। रामू पढा-लिखा तो था ही।

दीवानने आज्ञा शिरोधार्य कर ली। कागजोंपर सही रामूकी होने लगी।

कुछ दिन बाद।

'मेरे कोई सतान नहीं है। मैं तुम्हें युवराजके पदपर बैठाना चाहता हूँ।'—नरेशने रामूसे कहा। वे उसे पुत्रकी भाँति प्यार करने लग गये थे।

'सरकार! मुझे लज्जित न करें। मैं सरकारकी चरण-सेवा नहीं त्याग सकता। इतने बडे लाभकी तुलनामें राज्य-सुख तुच्छ है।' रामूने सेवापरायण पुत्रकी भाँति उत्तर दिया।

राजाने उसकी बात मान ली और आज्ञा देकर उससे राजकार्य कराने लगे।

× × × ×

'मैं तो आपका सेवक हूँ। यह सब आपकी ही कृपासे प्राप्त है।'—दीवानके चरण पकडकर रामूने कहा।

'अरे, आप महाराजके प्रतिनिधि हैं। आप सिहासनके अधिकारी हैं। मुझे लज्जित न करें। घबराये हुए दीवान किसी प्रकार रामूको सिहासनपर बैठानेमें

सफल हो सके । दीवान दरबारमें आये थे ।

'मैं तो आपके चरणोंका चाकर हूँ । यह सब आपकी ही कृपासे मुझे प्राप्त हुआ है ।' रामू पेशकारके पैर पकडकर कहने लगा और उसे सिहासनपर बैठानेके लिये अपनी ओर खींचने लगा ।

बेचारा पेशकार किसी कामसे आ गया था । बड़ी कठिनाईसे रामूको सिहासनपर बैठाकर अपने स्थानपर बैठा ।

'भैया ! तुम्हारी ही कृपासे मुझे यह सिंहासन प्राप्त हुआ है । चलो, सिंहासनपर बैठो !'—सिंहासनसे उतरकर दौड़ते हुए पेशकारके पुराने नौकरके पास जाकर रामूने विनयपूर्वक कहा ।

'पेशकार साहब और दीवान साहबके सामने मैं ऊँचे आसनपर कभी नहीं बैठ सकता । आप मुझे लज्जित न कीजिये'—कहकर पेशकारका नौकर वहीं पृथ्वीपर बैठ रहा । वह किसी कामसे आ गया था । रामूमें अहकारका लेश भी न था ।

× × × ×

'विनयके तुम मूर्तिमान् स्वरूप हो । अहता, ममता तो तुम्हें स्पर्श भी नहीं कर सकी है । अत्यन्त छोटे कर्मचारीसे लेकर ऊँचे पदाधिकारीतक सभी तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हैं । तुममे शासन ग्रहण करनेकी अपूर्व योग्यता और क्षमता भी दीखती है । अतएव तुम मेरी बात मानकर राजपद स्वीकार करो । अब मैं एकान्तवास करना चाहता हूँ ।'—राजाने रामूके सामने प्रस्ताव रखा ।

'सरकार सदा-सर्वदा अपने चरणोंके समीप रखनेका मुझे वरदान दे चुके हैं, फिर एक क्षण भी मुझे अलग कैसे कर सकेंगे ? मुझे राजपदकी बिलकुल इच्छा नहीं है । सरकार ! ऐसा कहकर मुझे लज्जित न करें और मैं सरकारसे एक क्षण भी अलग नहीं रह सकूँगा । मैं राजपद स्वीकार करनेमें सर्वथा असमर्थ हूँ, इसके लिये प्रेमपूर्वक क्षमा चाहता हूँ ।'—रामूने विनय, प्रेम और दृढताके स्वरोंमें अपना निर्णय नरेशको सुना दिया ।

'मेरे साथ रहकर राज्यका शासनपद ग्रहण करो।' महाराजको विवश होकर अपनी इच्छा परिवर्तित करनी पडी।

रामू अब राजाके साथ रहकर राज्यका काम सँभालता था।

× × × ×

रामू कहारकी यह कल्पित कहानी दृष्टान्तरूपसे कही गयी है। इसे परमार्थ-विषयमे इस प्रकार घटाना चाहिये। परमात्माकी प्राप्तिके मार्गपर चलनेवाले साधक पुरुषको यहाँ रामू कहार समझना चाहिये। भगवान्के दासका दासानुदास पेशकारके यहाँ रहनेवाला नौकर गोपालको समझना चाहिये। भगवान्का दासानुदास उस पेशकारको समझना चाहिये और दीवानको भगवान्का दास तथा इच्छानगरीके महाराज साहेबको साक्षात् भगवान् समझना चाहिये। महाराज साहेबके भक्ति, ज्ञान, योग आदिको भगवान्के गुण तथा प्रभाव समझना चाहिये। राजाकी रानीको ईश्वरकी शक्ति भगवती देवी समझना चाहिये। रामू कहारका वेतनसे लेकर राजपदतक कुछ भी स्वीकार न करना निष्कामभावसयुक्त स्वार्थका त्याग तथा श्रद्धापूर्वक उत्साहसे काम करनेको उसका साधन समझना चाहिये। उसके श्रद्धा, भक्ति, विनयपूर्वक अहंकाररहित बर्तावको ही आदर्श शिष्टाचार समझना चाहिये। राजपदको मुक्ति और राजाके नित्य समीप रहनेको ही उच्चकोटिका विशुद्ध प्रेम समझना चाहिये।

इस दृष्टान्तसे हमे यह शिक्षा लेनी चाहिये कि अहकार, ममता, आसक्ति और स्वार्थको त्यागकर श्रद्धा, भक्ति और विनयपूर्वक निष्कामभावसे भगवान्के दासानुदासके सङ्ग और सेवा करते हुए भगवान्की आज्ञाका पालन करे तथा मुक्तिकी भी इच्छा न रखकर निष्काम प्रेमभावसे भगवान्के नित्य समीप रहकर भगवान्का निरन्तर स्मरण रखते हुए ही सेवा करनेका आग्रह रखें।
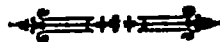
गीताके श्लोकके अर्थ और रहस्यका भेद

एक बहुत ही सतोषी, सदाचारी और विद्वान् ब्राह्मण थे, किंतु थे वे निर्धन । उनकी पत्नी बडी पतिव्रता, विदुषी, तत्त्वज्ञानसे सम्पन्न और जीवन्मुक्त थीं । उस देशके राजा भी तत्त्वज्ञानी जीवन्मुक्त महात्मा थे । ब्राह्मण-पत्नीने एक दिन विचार किया—मेरे पतिदेव सतोषी, सदाचारी और विद्वान् हैं, इसलिये वे मुक्तिके अधिकारी तो हैं ही । इनकी यदि हमारे जीवन्मुक्त राजासे भेंट हो जाय तो ये भी शीघ्र तत्त्वज्ञानी—जीवन्मुक्त हो सकते हैं । यह सोचकर उसने पतिसे प्रार्थना की—'पतिदेव । आजकल अपने शरीरनिर्वाहके लिये बडी ही तगी हो गयी है और आयका कोई भी रास्ता नहीं दीखता । सुना जाता है, यहाँके राजा बडे सदाचारी, जीवन्मुक्त महात्मा हैं तथा ब्राह्मणोका आदर-सत्कार करनेवाले एव परम उदार हैं । आप उनसे एक बार मिल लें तो वे आपका उचित सत्कार कर सकते हैं और शास्त्रविधिके अनुसार यदि राजा बिना याचना किये ही कुछ दें तो वह ब्राह्मणके लिये अमृतके समान है—यह आप जानते ही हैं ।'

पण्डितजीने कहा—'तुम्हारा कहना ठीक है, परतु मैं जबतक किसीका कोई उपकार न कर दूँ, तबतक अयाचकवृत्तिसे भी—बिना माँगे उससे दान लेकर जीवन-निर्वाह करना निन्दास्पद समझता हूँ, अतएव मैं ऐसा नहीं करूँगा, चाहे मुझे भूखों ही रहना पडे ।'

ब्राह्मण-पत्नी बोली—'आप विद्वान् हैं, राजाको यथोचित उपदेश देकर उनका उपकार कर सकते हैं ।'

यह बात पण्डितजीको कुछ रुची, पर उनका मन राजाके पास जानेका नहीं होता था। अन्तमे पत्नीके बहुत कहनेपर वे राजी हो गये और राजसभामे चले गये। पण्डितजीके सद्गुण और सदाचारोंकी ख्याति देशभरमे फैली हुई थी। राजाने पण्डितजीका बडा आदर-सत्कार किया। कुशलक्षेम-प्रश्नोत्तरके अनन्तर राजा बहुत-सी स्वर्णमुद्राएँ मॅगाकर पण्डितजीको भेट की।' पण्डितजीने उन्हें अस्वीकार करते हुए कहा—'राजन्। आप बडे उदार हैं, मैं यह जानता हूँ। परंतु मेरा एक नियम है, मैं किसीका उपकार किये बिना उससे अयाचित-रूपमें भी धन नहीं लेता। आप मुझे कोई काम सौपे और उससे मैं आपको सतोष करा सकूँ, उसके बाद यदि आप कुछ दें तो वह लिया जा सकता है।' राजाने कहा—'पण्डितजी।बहुत अच्छा। आप सदाचारी विद्वान् ब्राह्मण हैं। मैं आपसे गीताका रहस्य सुनना चाहता हूँ। आप कृपापूर्वक मुझे गीताके बारहवे अध्यायके सोलहवें श्लोकका भावसहित स्पष्ट अर्थ समझाइये।'

पण्डितजीने पहले श्लोक पढा, फिर उसका शब्दार्थ बतलाया—

अनपेक्ष· शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्त स मे प्रिय॥

'जो पुरुष आकाङ्क्षासे रहित, बाहर-भीतरसे शुद्ध, चतुर, पक्षपातसे रहित और दु खोंसे छूटा हुआ है, वह सब आरम्भोंका त्यागी मेरा भक्त मुझको प्रिय है।'

तदनन्तर वे श्लोकका भावार्थ इस प्रकार बतलाने लगे—जिसे किसी भी प्रकारकी इच्छा, स्पृहा और कामना न हो—जो आप्तकाम हो एव जिसे किसी बातकी भी परवा न हो, उसे 'अनपेक्ष' कहते हैं।

जिसका अन्त करण अत्यन्त पवित्र हो, जिसका बाहरका व्यवहार भी

उद्वेगरहित, पवित्र और न्याययुक्त हो, जिसके दर्शन, भाषण, स्पर्श और वार्तालापसे ही लोग पवित्र हो जायँ, वह 'शुचि' है ।

जिस महान् कार्यके लिये मनुष्य-शरीर मिला है, उसे प्राप्त कर लेना अर्थात् भगवान्‌को प्राप्त कर लेना ही मनुष्यकी यथार्थ दक्षता है, जो अपना काम बना लेता है, वही 'दक्ष' कहलाता है ।

जो गवाही देते समय और न्याय या पंचायत करते समय कुटुम्बी, मित्र, बन्धु आदिकी दृष्टिसे या राग, द्वेष, लोभ, मोह एव भय आदिके वश होकर किसीका भी पक्षपात नहीं करता—सदा-सर्वदा पक्षपातरहित रहता है, उसे 'उदासीन' कहते हैं ।

किसी भी प्रकारके भारी-से-भारी दु ख अथवा दु खके हेतु प्राप्त होनेपर भी जो दु खी नहीं होता अर्थात् जिसके अन्त.करणमे कभी किसी तरहका विषाद, दु ख या शोक नहीं होता, वही 'गतव्यथ' है ।

जो बाहर-भीतरके समस्त कर्मोंको त्यागकर केवल प्रारब्धपर ही निर्भर रहता है, अपने स्वार्थकी सिद्धिके लिये कुछ भी कर्म नहीं करता, अपने-आप जो कुछ प्राप्त हो जाय, उसीमे सतुष्ट रहता है तथा प्रारब्धवश होनेवाली क्रियाओंमें जिसके कर्तापनका अभिमान नहीं है, ऐसे बाहर और भीतरके त्यागको 'सर्वारम्भपरित्यागी' कहते हैं ।

पण्डितजीके उपर्युक्त भावार्थ बतला चुकनेपर राजाने नम्रतासे कहा—'महाराजजी । आपने बडा सुन्दर अर्थ किया । आपका कथन सर्वथा युक्तियुक्त और शास्त्रसगत है तथापि मेरा ऐसा अनुमान है कि श्लोकका बहुत सुन्दर अर्थ करनेपर भी आप अभी इसके रहस्यसे अनभिज्ञ हैं ।' पण्डितजी झुँझलाकर बोले—'रहस्य न जानता होता तो भावसहित अर्थ कैसे बतला सकता । मुझे गीताकी बावन टीकाएँ कण्ठस्थ हैं । इसके अतिरिक्त कोई विशेष रहस्य हो और उसे आप जानते हो तो आप ही बतलाइये ।'

राजाने इसका उत्तर न देकर बड़ी विनम्र वाणीमें कहा—'पण्डितजी! मुझे आपकी शास्त्रसम्मत सुन्दर व्याख्यासे बडा सतोष हुआ है, मैं आपका बहुत आभारी हूँ। अत मेरी दी हुई भेंट आप कृपया स्वीकार कीजिये।'

पण्डितजीने कहा—'राजन्! जब आप मेरे लिये यह कहते हैं कि मै रहस्यसे अनभिज्ञ हूँ, तब सतोषकी बात कहाँ रही। यह तो कहनेभरका सतोष है। मैं जबतक आपको वास्तवमे सतोष न हो जाय, तबतक आपसे कुछ भी लेना नहीं चाहता।' राजाके बहुत अनुनय-विनय करनेपर भी पण्डितजीने भेट स्वीकार नहीं की और वे घर लौट आये। उधर राजाने एक विश्वासपात्र गुप्तचरको बुलाकर कहा—'ये ब्राह्मण देवता बडे त्यागी, सदाचारी और स्वाभिमानी विद्वान् हैं। तुम इनके पीछे जाकर देखो, घरपर इनका कैसा क्या व्यवहार और वार्तालाप होता है और फिर उसकी सूचना मुझे दो।' राजाका आदेश पाकर गुप्तचर उनके पीछे हो लिया और उन सबका व्यवहार-वार्तालाप देखता रहा।

पण्डितजीने घर लौटकर पत्नीके पूछनेपर राजसभाकी सारी कथा आद्योपान्त उसे सुना दी। पत्नीने विनय और प्रेमसे कहा—'स्वामिन्! राजाने जो कुछ कहा, वह तो उचित ही मालूम होता है। आपको नाराज नहीं होना चाहिये था।'

पण्डितजी—(कुछ क्रोधावेशमें आकर तथा व्यथित-से होकर) वाह! तुम भी राजाकी ही बातका समर्थन करती हो।

पत्नी—नाथ! आप ही तो कहा करते हैं कि न्याययुक्त बातका समर्थन करना चाहिये।

पण्डितजी—(कुछ और भी उत्तेजनासे तुरत उसे दबाते हुए) क्या राजाका यह कहना न्याययुक्त है कि मेरी व्याख्या तो सुन्दर है, पर मैं

इसके रहस्यको नहीं समझता ?

पत्नी—आप क्षमा करें। राजाकी बात तो बहुत ही ठीक है। किसी श्लोककी व्याख्या करना सहज है, पर उसका यथार्थ रहस्य जानना बहुत ही कठिन है।

पण्डितजी—कैसे ?

पत्नी—जैसे ग्रामोफोनपर जो चूडी चढा दी जाती है, वह वही गाना गा लेती है, पर उसके रहस्यको वह थोडे ही समझती है।

पण्डितजी—तो क्या मैं ग्रामोफोनकी तरह हूँ ?

पत्नी—जो पुरुष दूसरोंको उपदेश-आदेश तो बडा सुन्दर करता हो, किंतु स्वयं उसमें वे बातें चरितार्थ न होती हों तो आप ही बतलाइये, ग्रामोफोनमें और उसमें क्या अन्तर है ? राजाके पूछनेपर आपने श्लोककी जो व्याख्या की, क्या वे सारी बातें आपमे चरितार्थ होती हैं ?

पण्डितजी—क्यों नहीं ? कौन-सी बात मुझमें नहीं है ?

पत्नी—आप शान्तिसे मेरा निवेदन सुनिये। मेरी प्रार्थना है—आप उस श्लोकके प्रत्येक पदका अर्थ पुन· मुझे बतलाइये। 'अनपेक्ष' का क्या भाव है ?

पण्डितजी—जिसे किसी भी प्रकारकी इच्छा, स्पृहा और कामना न हो, जो आप्तकाम हो एव जिसे किसी भी बातकी परवा न हो, उसे 'अनपेक्ष' कहते हैं।

पत्नी—क्या आप ऐसे हैं ?

पण्डितजी—क्यों नहीं ? मुझे तो कोई भी इच्छा, स्पृहा और कामना नहीं है। मैं तो तुम्हारे ही अनुरोध करनेपर राजाके पास गया था और राजाके अनुनय-विनय करनेपर भी मैंने उनसे कुछ भी नहीं लिया।

पत्नी—बहुत अच्छा। सत्य है, आप मेरे ही आग्रहसे गये थे।

यह आपकी मुझपर दया है । अच्छा, 'शुचि' का क्या अभिप्राय है ?

पण्डितजी—जिसका अन्त करण अत्यन्त पवित्र हो, जिसका बाहरका व्यवहार भी उद्वेगरहित, पवित्र और न्याययुक्त हो, जिसके दर्शन, भाषण, स्पर्श और वार्तालापसे ही लोग पवित्र हो जायँ, वह 'शुचि' है ।

पत्नी—क्या आप बाहर-भीतरसे इस प्रकार शुद्ध हैं ? क्या आपके दर्शन, भाषण, स्पर्श, वार्तालाप करनेसे मनुष्य पवित्र हो जाता है ? क्या आपके अन्त करणमे कोई विकार नहीं होता ? क्या आपका बाहरका व्यवहार उद्वेगरहित, न्याययुक्त और पवित्र है ? यदि ऐसा है तो फिर आपके मनमें क्रोध तथा उद्वेग क्यों हुआ और राजासे अपने अहकारके वचन क्यों कहे ?

पण्डितजी—(सहमकर) ठीक है,इस गुणकी तो मुझमे कमी है ।

पत्नी—अच्छा, 'दक्ष'का आपने क्या भाव बतलाया ?

पण्डितजी—जिस महान् कार्यके लिये मनुष्यशरीर मिला है, उसे प्राप्त कर लेना अर्थात् भगवान्‌को प्राप्त कर लेना ही मनुष्यकी यथार्थ दक्षता है । जो अपना काम बना लेता है वही 'दक्ष' कहलाता है ।

पत्नी—तो क्या आप जिस महान् कार्यके लिये ससारमें आये थे, उसे पूरा कर चुके ? क्या आपने परमपदको प्राप्त कर लिया ? नहीं तो फिर राजाका कहना उचित ही है ।

पण्डितजी—तुम्हारा कथन सत्य है । मुझमें यह भी गुण नहीं है ।

पत्नी—'उदासीन' पदका क्या अभिप्राय है ?

पण्डितजी—जो गवाही देते समय, न्याय या पंचायत करते समय कुटुम्बी, मित्र, बन्धु आदिकी दृष्टिसे या राग, द्वेष, लोभ, मोह एवं भय आदिके वश होकर किसीका भी पक्षपात नहीं करता, सदा-सर्वथा पक्षपातरहित रहता है, उसे 'उदासीन' कहते हैं ।

पत्नी—क्या आप पक्षपातरहित हैं ? क्या आपने राजाके सम्मुख अपने पक्षका समर्थन नहीं किया ? क्या आपने राजाके इस कथनपर कि

आप श्लोकके रहस्यको नहीं समझते, गम्भीरतापूर्वक ध्यान दिया ? नहीं तो, फिर राजाका कहना कैसे उचित नहीं है ?

पण्डितजी—(सरल और शुद्ध हृदयसे अपनी कमीको विनम्र भावसे स्वीकार करते हुए) तुम सच कहती हो । सचमुच, तुमने आज मेरी आँखें खोल दीं । पक्षपातरहित होनेका तो मुझमें बडा अभाव है । कहीं वाद-विवाद होता है तो मैं अपने पक्षको दुर्बल जानकर भी अपने पक्षके दुराग्रहको नहीं छोडता ।

पत्नी—अच्छा, 'गतव्यथ'का आप क्या अर्थ करते हैं ?

पण्डितजी—किसी भी प्रकारके भारी-से-भारी दु ख अथवा दु खके हेतु प्राप्त होनेपर भी जो दुखी नहीं होता अर्थात् जिसके अन्त.करणमें कभी किसी तरहका विषाद, दु ख या शोक नहीं होता, वही 'गतव्यथ' है ।

पत्नी—क्या आपके चित्तमे कोई व्यथा नहीं होती ? यदि नहीं होती तो फिर राजाके वचनोंपर और मेरे समर्थन करनेपर आपको इतना उद्वेग और व्यथा क्यों होनी चाहिये ?

पण्डितजी—तुम्हारा कहना सत्य है । यह भाव मुझमें बिलकुल नहीं है । मनके विपरीत होनेपर प्रत्येक पदपर केवल व्यथा ही नहीं भय, उद्वेग, ईर्ष्या, शोक आदि विकार भी मुझमें दिखायी पडते हैं ।

पत्नी—अच्छा, 'सर्वारम्भपरित्यागी'से आप क्या समझते हैं ?

पण्डितजी—जो बाहर-भीतरके समस्त कर्मोंको त्यागकर केवल प्रारब्धपर ही निर्भर रहता है, अपने स्वार्थकी सिद्धिके लिये कुछ भी कर्म नहीं करता, अपने-आप जो कुछ प्राप्त हो जाय उसीमें सतुष्ट रहता है तथा प्रारब्धवश होनेवाली क्रियाओंमें जिसके कर्तापनका अभिमान नहीं है, ऐसे बाहर और भीतरके त्यागीको 'सर्वारम्भपरित्यागी' कहते हैं ।

पत्नी—बहुत सुन्दर व्याख्या है, परतु बतलाइये, क्या आपने

बाहर और भीतरसे सब कर्मोंका त्याग कर दिया ? और क्या आपके अन्त करणमे कोई सासारिक सकल्प नहीं होता ? यदि नहीं तो फिर आपको इतना अहकार क्यो होना चाहिये ? बाहरसे तो आप सब कर्म करते ही हैं ।

पण्डितजी—'सत्य है, यह बात तो मुझमें बिलकुल ही नहीं घटती । मैं अपनी सारी त्रुटियोंको समझ गया । सचमुच मैं अबतक अर्थ करता ही था । रहस्यसे अनभिज्ञ था । अब कुछ-कुछ समझमें आ रहा है । अत तुम अनुमति दो, अब मै बाहर और भीतरसे सब कुछ त्यागकर सच्चा सन्यासी बनने जाता हूँ ।'—यों कहकर पण्डितजी सब कुछ छोड घरसे चलने लगे ।

पत्नीने प्रार्थना की—महाराजजी ! मैं भी आपके साथ ही आपका अनुगमन करना चाहती हूँ ।

पण्डितजी—मैं अपने साथ किसी झझटको नहीं रखना चाहता, फिर स्त्रीको तो रखूँ ही कैसे ?

पत्नी—मुझे आप झझट न समझिये । मैं आपके साधनमें कोई विघ्न नहीं करूँगी । मैंने जो आज आपको राजाके पास भेजा था, सो धनके लिये नहीं । धनको तो मैंने एक निमित्त बनाया था । मेरा उद्देश्य तो यही था कि आप जीवनके मुख्य लक्ष्यको प्राप्त कर लें । राजा तत्त्वज्ञ जीवन्मुक्त महात्मा पुरुष हैं । आप धर्मज्ञ, सदाचारी, त्यागी, संतोषी, विद्वान् तो हैं ही । तत्त्वज्ञ राजाके सङ्ग-प्रभावसे आपको परमात्माकी प्राप्ति भी हो जायगी—इसी लक्ष्यसे मैंने आपको वहाँ भेजा था । अब यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं भी आपके साथ चलना चाहती हूँ ।

पण्डितजी—(कृतज्ञताके साथ) मैं अब इस बातको समझ गया । सचमुच तुमसे कोई हानि नहीं होगी । तुम्हीं तो मेरा सच्चा उपकार

भगवन्नाम अमूल्य है

गोस्वामी तुलसीदासजीने अपने मानसमें भगवन्नाम-महिमाका वर्णन करते हुए यहाँतक कहा है कि कलियुगमें केवल भगवान्के नामका ही आधार है। गणिका और अजामिल-सदृश बड़े-से-बड़े पापी केवल नामके प्रभावसे सहजमें ही मुक्त हो गये। श्रीहनुमान्जीने इसी नामके प्रभावसे भगवान् श्रीरामको अपने वशमे कर रखा है। नामको जीभपर रखनेमात्रसे बाहर और भीनर प्रकाश छा जाता है। नामकी महिमा इतनी अधिक है कि स्वय भगवान् भी उसका वर्णन करनेमे असमर्थ हैं—'राम न सकहिं नाम गुन गाई ।।' यहाँतक कि भगवान् शिव इस नामकी शक्तिसे ही काशीमें समस्त जीवोंको मुक्ति प्रदान किया करते हैं। इसी प्रकार श्रीमद्भागवत, महाभारत आदि अन्य शास्त्र भी नाम-महिमासे भरे पडे हैं, परतु क्या कारण है कि इसके अनुसार नामका प्रत्यक्ष परिणाम देखनेमें नहीं आता ?

इस प्रकारके तर्क उपस्थित करते हुए कई महानुभाव प्रश्न किया करते हैं। इन सबका उत्तर यह है कि प्रत्यक्ष फल न दीखनेका कारण भगवान्के नाममें श्रद्धाकी कमी है। वस्तुत भगवन्नामकी जो महिमा शास्त्रोने गायी है, वह उससे कहीं अधिक है। नाम-महिमाकी कोई सीमा ही नहीं है। शास्त्रकथित महिमा तो नामसे लाभ प्राप्त किये हुए महात्माओके उद्गार मात्र हैं। जिस प्रकार ईश्वर और सत्सङ्गकी जितनी महिमा कही जाय, उतनी ही थोडी है, उसी प्रकार नामकी महिमाका जितना वर्णन हो, उतना ही थोडा है, असलमें

भगवन्नामके तत्त्व, रहस्य, गुण, प्रभाव आदि न जाननेके कारण ही उसके प्रति श्रद्धामें कमी है। श्रद्धाके अभावमें तथा कहीं-कहीं तो श्रद्धासे सर्वथा विपरीत अश्रद्धाके कारण मनुष्यको यथार्थ लाभसे वञ्चित रहना पडता है। नामकी तो अमित महिमा है। संसारके किसी भी पदार्थके साथ भगवन्नामकी तुलना नहीं हो सकती। यहाँके जड एवं नाशवान् पदार्थोंको लेकर भगवान्के नामको तौलने बैठना तो अपनी अज्ञताका ही परिचय देना है।

भगवन्नामके प्रभावपर एक दृष्टान्त

एक बहुत उच्चकोटिके भगवद्भक्त नामनिष्ठ महात्मा थे। उनके समीप उनका एक शिष्य रहता था। एक समयकी बात है कि वे महात्मा कहीं बाहर गये हुए थे, उसी समय उनकी कुटियापर एक व्यक्ति आया और उसने पूछा—'महात्माजी कहाँ हैं?' शिष्यने कहा—'स्वामीजी महाराज तो किसी विशेष कार्यवश बाहर पधारे हैं। आपको कोई काम हो तो कहिये।' आगन्तुकने कहा—'मेरा लडका अत्यधिक बीमार है, उसे कैसे आरोग्य लाभ हो? महात्माजीकी अनुपस्थितिमें आप ही कोई उपाय बतानेकी कृपा करें।'

शिष्यने उत्तर दिया—'एक बहुत सरल उपाय है—'राम'नामको तीन बार लिख ले और उसे धोकर पिला दे। बस, इसीसे आराम हो जायगा।'

आगन्तुक अपने घर चला गया। दूसरे दिन वह व्यक्ति बडी प्रसन्न मुद्रासे महात्माजीकी कुटियापर आया। उस समय महात्माजी वहाँ उपस्थित थे। उनके चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणिपात करके उसने विनम्र शब्दोंमें हाथ जोडकर निवेदन किया—'स्वामीजी महाराज! आपके शिष्य तो सिद्ध पुरुष हैं। कलकी बात है, मैं यहाँ आया था, उस समय आप कहीं बाहर पधारे हुए थे, केवल ये आपके शिष्य थे। आपकी अनुपस्थितिमें इन्हींसे मैंने अपने प्रिय पुत्रकी रोग-निवृत्तिके

लिये उपाय पूछा। तब इन्होने बतलाया कि तीन वार 'राम'नाम लिखो और उसे धोकर पिला दो। मैने घर जाकर ठीक उसी प्रकार किया और महान् आश्चर्य एव हर्षकी बात है कि इस प्रयोगके करते ही लडका तुरत उठ बैठा, मानो उसे कोई रोग था ही नहीं।'

यह सुनकर महात्मा अपने शिष्यपर बडे रुष्ट हुए और उसके हितके लिये क्रोधका नाट्य करते हुए बोले—'अरे मूर्ख! इस साधारण-सी बीमारीके लिये तूने राम-नामका तीन बार प्रयोग करवाया। तू नामकी महिमा तनिक भी नहीं जानता। अरे, एक बार ही नामका उच्चारण करनेसे अनन्तकोटि पापोका और भवरोगका नाश हो जाता है और मनुष्य अनामय परमपदको प्राप्त हो जाता है। तू इस आश्रममें रहनेयोग्य नहीं। अत जहाँ तेरी इच्छा हो, चला जा।' इसपर शिष्यकी आँखोमे आँसू आ गये और उसने अपने गुरुदेवसे बहुत अनुनय-विनय की। सत तो नवनीत-हृदय होते ही हैं, ऊपरसे भी पिघल गये और उसके अपराधको क्षमा कर दिया।

इसके पश्चात् महात्माजीने चम-चम करता हुआ एक सुन्दर चमकीला पत्थर कहींसे निकाला और उसे शिष्यके हाथमें देकर कहा—'तू शहरमे जाकर इसकी कीमत करा ला। सावधान! इसे किसी कीमतपर बेचना नहीं है, केवल कीमतभर आँकवानी है। कौन क्या कीमत आँकता है, इसे लिखकर लौट आना।'

शिष्य उसे लेकर बाजार चल दिया। सबसे पहले एक साग बेचनेवाली मालिन मिली। उसने पत्थर निकालकर उसे दिखलाया और पूछा—'तू इसकी अधिक-से-अधिक क्या कीमत दे सकती है?' साग बेचनेवालीने पत्थरकी चमक और सुन्दरता देखकर सोचा—'यह बडा अच्छा पत्थर है, बच्चोंके खेलनेके लिये बड़ी सुन्दर वस्तु है।' वह बोली—'इसकी कीमतमें सेर-डेढ-सेर मूली या आलू या जो साग

तुम्हें पसंद हो ले सकते हो ।' 'बेचना नहीं है' कहकर शिष्य आगे बढा तो एक बनियेसे भेंट हुई । उससे पूछा—'सेठजी! इस पत्थरका मूल्य आप क्या दे सकते हैं?' बनियेने विचार किया—पत्थर तो बडा ही सुन्दर तथा चमकीला है और खूब वजनदार भी है, अत सोना-चाँदी तौलनेमे इसका अच्छा उपयोग हो सकता है। उसने कहा—'एक रुपया दे सकता हूँ ।' उसे इनकार करके शिष्य आगे चला तो एक सुनारकी दूकानपर पहुँचा । सुनारने देखकर विचार किया कि यह तो अपने बड़े कामकी चीज है । इसे तोडकर बहुत-से पुखराज बनाये जा सकते हैं । अत· उसने कहा—'अधिक-से-अधिक एक हजार रुपयेतक मैं दे सकता हूँ ।'

'बेचना नहीं है' कहकर शिष्य बड़े उत्साहसे अग्रसर हुआ और एक जौहरीकी दूकानपर पहुँचा । पहले गुरुदेवके पाससे चला था, तब तो उसे किसी जौहरीके पास जानेका साहस ही नहीं होता था, पर ज्यो-ज्यों उस पत्थरके मूल्यमें वृद्धि होती गयी, त्यों-ही-त्यों उसका साहस भी बढता गया । अब उसकी दृष्टि भी बदल गयी । उसकी जो यह मान्यता थी कि यह एक साधारण चमकीला पत्थर है, वह नष्ट हो गयी । जौहरीको दिखलाकर उसकी कीमत पूछी । जौहरीने विचार किया तो उसने हीरा समझा और वह उसके मूल्यमे एक लाख रुपये देनेको तैयार हो गया । परतु बेचना तो था नहीं । अत शिष्य उसे भी वही उत्तर देकर उच्च कोटिके जौहरियोंके पास पहुँचा । सबने मिलकर उसकी जाँच की और पाँच करोड रुपये उसकी कीमत आँकी । तत्पश्चात् वह शिष्य राजाके पास गया । राजा साहेबने शिष्यको बड़े आदरसे बिठलाया और मुख्य-मुख्य सभी बड़े जौहरियोंको बुलाकर उस रत्नका मूल्य आँकनेके लिये कहा । सबने विचार-विमर्शके अनन्तर आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—'महाराज! हमने तो ऐसा रत्न

कभी देखा ही नहीं। इसलिये इसकी कीमत आँकना हमलोगोंकी बुद्धिसे परेकी बात है। हमे तो ऐसा प्रतीत होता है कि यदि आप अपना सम्पूर्ण राज्य भी दे दें तो वह भी इसके मूल्यमे पर्याप्त नहीं।'

महाराजने शिष्यसे पूछा—'ऐसा अनुपम रत्न तुम्हें कैसे मिला?' शिष्यने उत्तर देते हुए कहा—'इसे मेरे गुरुदेवने मुझे देकर केवल मूल्य अँकवानेके लिये ही भेजा है, पर बेचनेकी आज्ञा नहीं है।' राजा साहेबने बडे विनम्र शब्दोंमें कहा—'इसका मूल्य मेरे राज्यसे भी अधिक है। यदि तुम्हारे गुरुजी इसे बेचना चाहे तो इसके बदलेमे अपना सारा राज्य सहर्ष दे सकता हूँ। तुम पूज्य स्वामीजीसे पूछ लेना।' स्वामीजी उच्चकोटिके महात्मा हैं, इस बातको सभी जानते थे। अत. सबने बडे आदर-सत्कारके साथ उस शिष्यको वहाँसे विदा किया।

शिष्यने महात्माजीके पास लौटकर सारी कहानी उन्हे सुना दी और अन्तमें कहा—'गुरुदेव! मेरी तुच्छ सम्मति तो यह है कि जब राजा साहेब इसके मूल्यमे अपना सारा राज्य ही दे रहे हैं, तब तो इसे बेच ही डालना चाहिये।' महात्माजी बोले—'इसके मूल्यमें राज्य भी कोई वस्तु नहीं। अभीतक इसके अनुरूप इसकी कीमत नहीं आँकी गयी।' शिष्यने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—'राज्यसे बढकर और कीमत हो ही क्या सकती है?' महात्माजीने कहा—'यहाँ कोई लोहेकी बनी वस्तु मिल सकेगी क्या?' शिष्यने उत्तर दिया—'जी हाँ, आश्रममे कुछ यात्री आये हुए हैं। उनके पास तवा, चिमटा, सँडसी आदि लोहेके पर्याप्त बर्तन हैं। आज्ञा हो तो उनमेसे कुछ ले आऊँ?' महात्माजीने कहा—'हाँ, ले आओ।'

शिष्य कई लौहनिर्मित वस्तुएँ ले आया। महात्माजीने ज्यो ही उनसे पत्थरका स्पर्श कराया त्यो ही वे सारे लौह-पात्र देखते-ही-देखते

शुद्ध सोनेके बन गये । यह देखकर शिष्यको बड़ा आश्चर्य हुआ । उसने चकित होकर पूछा—'यह तो बडी विलक्षण वस्तु है, यह क्या है गुरुदेव ?' महात्माजीने उत्तर दिया—'यह वह स्पर्शमणि (पारस) पत्थर है, जिसके स्पर्शमात्रसे लोहा सोना बन जाया करता है । भला, अब तू ही बता कि इसकी कीमत कितनी होनी चाहिये ?' शिष्य बोला—'संसारमे अधिक-से-अधिक कीमत सोनेकी ठहरायी जाती है और वह कीमत इससे उत्पन्न होती है, फिर इसका मूल्य कैसे आँका जाय ।'

महात्माजी—'भगवन्नामका मूल्य तो इससे भी बढकर है । क्योंकि यह पारस तो जड पदार्थ है, इससे केवल जड पदार्थोंकी ही प्राप्ति हो सकती है, सच्चिदानन्द परमात्माकी नहीं । अत· किसी भी सासारिक पदार्थके साथ भगवान्‌के नामकी तुलना करना सर्वथा अनुचित है । इसकी तुलना करनेवाला पारसको सेर-डेढ-सेर मूली-आलूके शाकमें बेचनेकी मूर्खता करनेवालेसे कम मूर्ख नहीं । जिस प्रकार पारसको न पहचाननेवाला व्यक्ति उससे तुच्छ पदार्थ लेकर सदा कंगाल बना रहता है, उसी प्रकार राम-नामके महत्त्वको न जाननेवाला भी प्रेम और भक्तिकी दृष्टिसे सदैव दरिद्र ही रहता है । तू भगवन्नामके प्रभाव और तत्त्व-रहस्यको नहीं जानता, इसीलिये एक साधारणसे रोगके लिये तूने राम-नामका तीन बार प्रयोग करवाया । जिस नामके प्रभावसे भयङ्कर भवरोग मिट जाता है, उसे मामूली रोगनाशके लिये उपयोगमें लाना सर्वथा अज्ञता है । तेरी इस अज्ञताको मिटानेके लिये ही तुझे पारस देकर भेजा था ।' यह सुनकर शिष्य भगवन्नामका प्रभाव समझ गया और अपनी भूलके लिये बार-बार क्षमा-याचना करने लगा ।

इस कहानीसे हमलोगोंको यह शिक्षा मिलती है कि पारसके प्रभावसे अनभिज्ञ व्यक्तिको यदि पारस मिल जाय तो वह उसे अज्ञतावश

दो-ही-चार रुपयेमे बेच सकता है । यदि वे महात्मा शिष्यको ठीक मूल्यपर पारस बेचनेको कह देते तो वह अधिक-से-अधिक पाँच-सात सेर आलू या एक-दो रुपयेमें अवश्य बेच आता और इसे ही वह अधिक मूल्य समझता । इसी प्रकार जो मनुष्य भगवन्नामके प्रभावको नहीं जानते, वे उसे स्त्री, पुत्र, धन आदिके बदलेमे बेच डालते हैं ।

भगवन्नामका रहस्य

इसमें तनिक भी सदेह नहीं कि भगवान्‌के नाममें पापोंको नाश करनेकी बडी भारी शक्ति है । 'नाम अखिल अघपुज नसावन'—यह उक्ति सर्वथा सत्य है, परंतु लोग इसका रहस्य नहीं जाननेके कारण इसका दुरुपयोग कर बैठते हैं । वे सोचते हैं कि नाममें पाप-नाशकी महान् शक्ति है ही; अभी पाप कर लें फिर नाम लेकर उसे धो डालेंगे । यह सोचकर वे अधिकाधिक पाप-पङ्कमें फँसते ही चले जाते हैं । वे यह नहीं विचारते कि यदि वास्तवमें उनकी यह मान्यता ठीक हो, तब तो नामका जप पापोंका विनाशक नहीं, प्रत्युत वृद्धि करनेवाला ही सिद्ध हुआ, क्योंकि फिर तो सभी लोग नामका आश्रय लेकर मनचाहा पाप करने लगेंगे और इससे वर्तमान कालकी अपेक्षा भविष्यमें पापोंकी सख्या बहुत अधिक बढ़ जायगी । जिस प्रकार पुलिसकी पोशाक पहनकर चोरी करनेवाला अन्य चोरकी अपेक्षा अधिक दण्डनीय होता है, उसी प्रकार भगवन्नामकी ओट लेकर पाप करनेवाला व्यक्ति अधिक दण्डका पात्र हो जाता है, क्योंकि उसके पाप वज्रलेप हो जाते हैं, बिना भोगे उसका विनाश नहीं होता । नामकी आड लेकर पाप करना तो नामके दस अपराधोंमेंसे एक नामापराध है । नामके दस अपराध ये हैं—

सन्निन्दासति नामवैभवकथा, श्रीशेषयोर्भेदधी-,

नामास्तीति निषिद्धवृत्तिविहितत्यागौ हि धर्मान्तरै
साम्यं नामजपे शिवस्य च हरेर्नामापराधा दश ॥

१—सत्पुरुष—ईश्वरका भजन-ध्यान करनेवालोकी निन्दा, २—अश्रद्धालुओमें नामकी महिमा कहना, ३—विष्णु और शिवके नामरूपमें भेद-बुद्धि, ४-५-६—वेद-शास्त्र और गुरुके द्वारा कहे हुए नाम-माहात्म्यमें अविश्वास, ७—हरिनाममें अर्थवादका भ्रम अर्थात् नाम-महिमा केवल स्तुतिमात्र है, ऐसी मान्यता, ८-९-नामके बलपर विहितका त्याग और निषिद्धका आचरण और १०—अन्य धर्मोंसे नामकी तुलना यानी शास्त्रविहित कर्मोंसे नामकी तुलना—ये सब भगवान् शिव और विष्णुके नाम-जपमें नामके दस अपराध हैं ।

इन दस अपराधोंसे अपनेको न बचाते हुए जो नामका जप करते हैं, वे नामके रहस्यको नहीं समझते ।

वाणीके द्वारा नाम जपनेकी अपेक्षा मनसे जपना सौगुना अधिक लाभदायक है और वह मानसिक जप भी श्रद्धा-प्रेमसे किया जाय तो उसका अनन्त फल है, तथा वही गुप्त और निष्काम भावसे किया जाय तो शीघ्र परमात्माकी प्राप्ति करानेवाला है । अत इस रहस्यको भलीभाँति समझकर भगवन्नामका आश्रय लेना चाहिये ।

भगवन्नामका तत्त्व

असलमें नाम और नामीमें कोई भेद नहीं है । वे भिन्न होते हुए भी सर्वथा अभिन्न हैं । गीतामें भगवान् कहते हैं—'यज्ञाना जपयज्ञोऽस्मि' (१० । २५) । 'सब यज्ञोंमे जपयज्ञ मैं हूँ—अर्थात् अन्य समस्त यज्ञ तो मेरी प्राप्तिके साधन हैं, पर जपयज्ञ (नाम-जप) तो स्वय मैं ही हूँ । जो इस तत्त्वको हृदयङ्गम कर लेता है, ठीक-ठीक समझ लेता है, वह नामको कभी भूल नहीं सकता ।

भगवन्नामके गुण

जो नित्य-निरन्तर भगवान्‌के नामका जप करता रहता हैं वह सद्‌गुणोका समुद्र बन जाता है । जिस प्रकार सागरमे अनन्त जलराशि होती है, उसी प्रकार उसमे अनन्त सद्‌गुण आ जाते हैं । इससे सिद्ध होता है कि नाम बीजकी तरह है । जैसे बीजके बो देनेपर उसमेसे फूलकर अङ्कुर उत्पन्न होता है एव वही पुष्पित और पल्लवित होकर विशाल वृक्ष बन जता है, वैसे ही नाम जपनेवालेमें अनायास ही सारे सद्‌गुणोका प्रादुर्भाव हो जाता है ।

इसके लिये मनुष्यको भगवन्नामके गुण, प्रभाव, तत्त्व और रहस्यको समझना चाहिये । इस प्रकार समझनेसे ही उसकी नाममे परम श्रद्धा होती है और श्रद्धासहित किया हुआ जप ही तत्काल पूर्ण फल देता है । अत भगवान्‌के नाममे अतिशय श्रद्धा उत्पन्न हो, इसके लिये हमलोगोंको सत्पुरुषोका सङ्ग करना चाहिये । सत्पुरुषोका सङ्ग न मिलनेपर हमे सत्-शास्त्रोका—जिनमे भगवान् और उनके नामके तत्त्व, रहस्य, गुण, प्रभाव, श्रद्धा और प्रेमकी बाते बतायी गयी हो—अनुशीलन करना चाहिये । इस प्रकार करनेसे भगवन्नाममे श्रद्धा-प्रेम उत्पन्न हो जाता है और किये हुए जपका फल भी, जिसका शास्त्रोंमे वर्णन है, तत्काल प्रत्यक्ष देखनेमे आ सकता है ।

भगवान्‌के शीघ्र मिलनेमें भाव ही प्रधान साधन है

ससारमे क्रियाकी अपेक्षा भाव ही प्रधान है। छोटी-से-छोटी क्रिया भी भावकी प्रधानतासे मुक्ति तक दे सकती है और उत्तम-से-उत्तम क्रिया भी निम्नश्रेणीका भाव होनेपर नरकमे ले जाती है। जैसे कोई मनुष्य जप, तप, ध्यान, स्तुति, प्रार्थना, पूजा, पाठ, यज्ञ और अनुष्ठान आदि दूसरोके अनिष्ट या विनाशके लिये करता है तो उसके फलस्वरूप कर्ताको नरककी प्राप्ति होती है। उपर्युक्त अनुष्ठान आदि क्रिया यद्यपि बहुत ही उत्तम है तथापि भाव तामसी होनेके कारण कर्ताकी अधोगति करनेवाली होती है। भगवान् कहते हैं—

जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसा।

(गीता १४।१८)

'तमोगुणके कार्यरूप निद्रा, प्रमाद और आलस्यादिमे स्थित तामस पुरुष अधोगतिको अर्थात् कीट, पशु आदि नीच योनियोको तथा नरकोंको प्राप्त होते हैं।'

जब यही उत्तम क्रिया स्त्री, धन, पुत्र आदिकी प्राप्तिके लिये अथवा रोगनिवृत्तिके लिये की जाती है, तब राजसी भाव होनेके कारण उससे मध्यम गति प्राप्त होती है। सारांश यह है कि जिस-जिस भावसे क्रिया की जाती है, उस-उसकी ही प्राप्ति होती है। उपर्युक्त उत्तम क्रिया ही जब कर्तव्य समझकर निष्काम प्रेमभावसे भगवदर्थ की जाती है, तब उसका फल अन्त करणकी शुद्धि होकर भगवान्‌की प्राप्ति होती है। इस प्रकार एक ही क्रिया भावके कारण उत्तम, मध्यम और अधम फल देनेवाली होती है। एक निम्न श्रेणीकी क्रिया

है, किंतु भाव यदि उच्चकोटिका है तो वह भी मुक्ति प्रदान करनेवाली हो जाती है। जैसे माता-पिता, गुरुजनोके रूपमे बच्चोका शिक्षण और पालन करना, उनके मल-मूत्रकी सफाई करना, डाक्टरके रूपमें चीरफाड करना, सडक आदिकी सफाई करना, जलानेके लिये लकडियोका बोझ ढोना, वस्तुओंका न्याययुक्त क्रय-विक्रय करना, भृत्य तथा सेवाका काम करना—यहाँतककी गदगी मिटानेके लिये टट्टी-पेशाब साफ करना—इत्यादि जो निम्न श्रेणीकी क्रियाएँ हैं, ये सब भी कर्तव्य समझकर निष्काम-प्रेमभावसे की जायँ तो इनके फलस्वरूप अन्त करणकी शुद्धि होकर परमात्माकी प्राप्तितक हो सकती है, और ये ही क्रियाएँ सकामभावसे की जायँ तो इनसे अर्थकी सिद्धि होती है।

कहा जाता है, भीलनी शबरी मार्गपर झाड़ू लगाया करती तथा कूडा-करकट, काँटे आदि साफ किया करती एव जगलसे लकड़ियाँ इकट्ठी करके ऋषि-मुनियोंके आश्रमोंके पास रख दिया करती थी। यह देखनेमें नीची श्रेणीका काम दीख पडता है, किंतु वह उसे निष्कामभावसे कर्तव्य समझकर करती थी, इसलिये उसका भाव उत्तम होनेसे उसका अन्त करण शुद्ध होकर उसे भगवत्प्राप्ति हो गयी।

पद्मपुराणमे कथा आती है—जब नरोत्तम ब्राह्मण तुलाधार वैश्यके यहाँ गया, उस समय तुलाधार ग्राहकोंको माल बेचनेमें लगा था। इस कारण उसने कहा कि 'अभी मुझे अवकाश नहीं है। ग्राहकोंकी यह भीड एक पहर रात्रि बीतनेतक रहेगी, उसके बाद ही मुझे अवकाश मिल सकता है। यदि आप इतनी देर न रुक सकें तो आप सज्जन अद्रोहकके पास जाइये। आपके द्वारा जो बगुला मर गया है और आपकी धोती आकाशमें सूखनी बद हो गयी, इन सबका रहस्य आपको आगे मालूम हो जायगा।' भगवान्ने, जो

ब्राह्मणके रूपमे नरोत्तमके साथ-साथ चल रहे थे, कहा—'चलो, हम सज्जन अद्रोहकके पास चले।' यों कह वे वहांसे सज्जन अद्रोहकके पास जाने लगे, तव रास्तेमे नरोत्तमने उनसे पूछा कि तुलाधारने मेरे द्वारा वगुलेके भस्म होनेकी वात कैसे जानी ? भगवान्‌ने वतलाया कि क्रय-विक्रयमें सवके साथ सत्य तथा सम व्यवहार करता है, इसीसे इसे तीनो कालोंका ज्ञान है। इसी कारण उस तुलाधारके घरमे भगवान् ब्राह्मणके रूपमें निवास करते थे और अन्तमें वह तुलाधार वैश्य विमानमें वैठकर भगवान्‌के साथ परमधाममे चला गया।

यहाँ विचारना यह है कि तुलाधार वैश्यकी रस आदि क्रय-विक्रयरूप क्रिया तो देखनेमे निम्न श्रेणीकी है, परतु स्वार्थत्याग, सचाई, ईमानदारी और समताके व्यवहारके कारण वही क्रिया इतनी उच्च हो गयी कि उसे परमपद प्राप्त करानेवाली सिद्ध हुई।

इससे यही वात सिद्ध होती है कि भाव ही प्रधान है, क्रिया नहीं। इसलिये हमे उचित है कि हम जव कभी कोई क्रिया करे, उसे उत्तम-से-उत्तम भावसे करें।

जव नीची-से-नीची क्रिया भी उत्तम-से-उत्तम गति प्राप्त करा सकती है, तव फिर जहाँ क्रिया भी उत्तम-से-उत्तम हो और भाव भी उत्तम-से-उत्तम हो, वहां तो कहना ही क्या है। इसी भावको समझनेके लिये निम्नलिखित एक कहानी है—

भगवान्‌का एक भक्त साधक था। वह एक पीपलके वृक्षके नीचे रहकर भजन-ध्यान, गीता-पाठ, साधु-सेवा, तप और उपवास आदि किया करता था। एक समय वहां देवर्षि नारदजी पधारे। साधकने उनकी वडी सेवा-शुश्रूषा की। तदनन्तर जब नारदजी जाने लगे, तब उसने नारदजीसे पूछा—'भगवन्! आप कहाँ जा रहे है ?' नारदजीने बतलाया—'मैं भगवान्‌के पास वैकुण्ठमें जा रहा हूँ।' उसने

नारदजीके चरणोमें सिर नवाया और हाथ जोडकर उत्सुकतापूर्वक दीनभावसे प्रार्थना की कि 'क्या आप मेरे लिये भी भगवान्से यह पूछ लेगे कि मुझे उनके दर्शन कब होगे ?' नारदजीने कहा—'क्यों नहीं, जरूर पूछकर तुझे उत्तर दूँगा।' इतना कहकर नारदजी वहाँसे चल दिये और बडे प्रेमसे भगवान्के नाम और गुणोका कीर्तन करते हुए वैकुण्ठधाम पहुँचे ।

भगवान्ने पूछा—'नारद ! तुम कहाँसे आ रहे हो ?' नारदजीने कहा—'एक वृक्षके नीचे आपका एक भक्त आपके भजन-ध्यान और तपस्यामे सलग्न है, अभी मैं वहींसे आ रहा हूँ । भगवन् ! उसकी सेवा-पूजा, भजन-ध्यान और तपस्या प्रशसाके योग्य है । प्रभो ! उसने मेरे द्वारा आपसे यह पुछवाया है कि उसे आपके दर्शन कब होंगे ।' भगवान् बोले—'नारद ! यह बात मत पूछो ।' नारदजीकी उत्सुकता और बढी । उन्होने कहा—'क्यों नहीं भगवन् ?' भगवान्ने उत्तर दिया—'नारद ! वह जिस प्रकार भजन-ध्यान, सेवा-शुश्रूषा और तपस्या कर रहा है, उस प्रकार करते रहनेपर तो उसे मेरे दर्शन होनेमे बहुत विलम्ब होगा । इस प्रकार साधन करनेपर तो उसे उस पीपलके वृक्षके जितने पत्ते है, उतने वर्षों बाद मेरे दर्शन होंगे ।' भगवान्की यह बात सुनकर नारदजी सहम गये, उन्हें बडा आश्चर्य हुआ और वे बोले—भगवन् ! वह तो बहुत तीव्रतासे सेवा-शुश्रूषा, जप-ध्यान, तपस्या आदि कर रहा है, फिर उसके लिये इतना विलम्ब क्यो ?' भगवान्ने कहा—'नारद ! तुम इसका रहस्य नहीं समझते, मैं जो कुछ कहता हूँ, वह उससे कह देना ।' तदनन्तर नारदजीने भगवान्से और भी भक्ति, प्रेम, ज्ञान, वैराग्य-सम्बन्धिनी चर्चा की ।

फिर नारदजी वहाँसे लौटकर उसी पीपलके वृक्षके नीचे बैठे हुए उस भक्तके पास पहुँचे । नारदजीको देखते ही भक्त उनके चरणोमे गिर

पड़ा और बड़ी व्यग्रतासे पूछने लगा—'प्रभो! क्या मेरी भी चर्चा वहाँ चली थी?' उसकी व्याकुलताभरी बात सुनकर नारदजी मुग्ध हो गये और बोले—'तुम्हारा प्रसङ्ग चला तो था, किंतु कहनेमें सङ्कोच होता है।' भक्तने कहा—'भगवन्! सङ्कोच किस बातका है? क्या भगवान्‌ने साफ इनकार कर दिया? क्या इस जन्ममें मुझे भगवान् नहीं मिलेंगे? जो भी हो, आप मुझे बतलाइये तो सही। आप सङ्कोच न करें, मुझे इससे कोई दुःख नहीं होगा।'

उसके आग्रह करनेपर नारदजीने सारी बात ज्यों-की-त्यों बतला दी और कहा—'अन्तमें भगवान्‌ने तुम्हारे लिये यही कहा है कि इस प्रकार साधन करते-करते इस पीपलके वृक्षके जितने पत्ते हैं, उतने वर्षों बाद मेरे दर्शन होंगे।' इतना सुनते ही वह भक्त आश्चर्यचकित हो गया और करुणाभावपूर्वक गद्गद वाणीसे कहने लगा—'क्या मुझ-जैसे अधमको भगवान्‌के दर्शन होंगे? क्या यह बात भगवान्‌ने अपने श्रीमुखसे कही है? अहा! जब कभी हो, मुझे भगवान्‌के दर्शन तो अवश्य ही होंगे!' नारदजी बोले—'होंगे तो सही, क्योंकि भगवान्‌ने स्वयं अपने मुखसे कहा है, किंतु होंगे बहुत विलम्बसे।' यह सुनकर कि भगवान्‌के दर्शन अवश्य होंगे, उस भक्तके आनन्दका ठिकाना नहीं रहा। उसका भाव एकदम बदल गया। वह आनन्द-विह्वल होकर प्रेमार्द्रभावसे भगवान्‌के नाम और गुणोंका कीर्तन करता हुआ उन्मत्तकी भाँति नाचने लगा। आनन्द और प्रेममें वह इतना निमग्न हो गया कि उसे अपने तनकी भी सुधि नहीं रही। फिर विलम्ब ही क्या था! भगवान् उसी क्षण वहाँ प्रकट हो गये।

भगवान्‌को देखकर नारदजी अवाक् रह गये। उन्होंने पूछा—'भगवन्! आप तो कहते थे कि इस प्रकार साधन करते-करते इस वृक्षके जितने पत्ते हैं, उतने वर्षों बाद मेरे दर्शन होंगे। परंतु वर्षोंकी

बात तो दूर रही, अभी तो एक मुहूर्त भी नहीं बीत पाया है कि आप प्रकट हो गये ।' भगवान् बोले—'नारद ! वह बात दूसरी थी और यह बात ही दूसरी है । मैंने तुमसे कहा था न कि तुम इसके रहस्यको नहीं जानते । नारदजीने कहा—'प्रभो ! इसका क्या रहस्य है, वह मुझे बतलाइये ।' भगवान् बोले—'नारद ! उस समय तो इसके साधनमें क्रियाकी ही प्रधानता थी, किंतु अब इस समय तो क्रियाके साथ ही इसके भावकी भी प्रधानता है । साधुओंकी सेवा-शुश्रूषा, व्रत , उपवास, तपस्या, गीता-पाठ, सत्पुरुषोंका सङ्ग-स्वाध्याय और भजन-ध्यान आदि साधनरूप मेरी भक्ति करना बहुत ही उत्तम क्रिया है । इन सब क्रियाओंके साथ जबतक अनन्य प्रेमभाव नहीं होता, तबतक उसके लिये विलम्ब होना उचित ही है । जब भक्त अपनेको भुलाकर अनन्य प्रेम-भावमे मुग्ध होकर केवल मेरे भजन-कीर्तनमें ही निमग्न हो जाता है, तब मैं एक क्षण भी नहीं रुक सकता । इस समय इसका जो अपूर्व पवित्र प्रेमपूर्ण भाव है, उसकी ओर तो देखो, उस समय क्रिया उत्तम रहते हुए भी इसका ऐसा भाव नहीं था । इसीलिये मैंने यह कहा था कि 'इस प्रकारका साधन करनेपर तो उस वृक्षके जितने पत्ते हैं, उतने वर्षोंके बाद मेरे दर्शन होंगे ।' इस रहस्यको सुनकर नारदजी भी प्रेम-विह्वल हो गये और भावावेशमें अपनी सारी सुध-बुध भूलकर भगवान्के नाम और गुणोंका कीर्तन करते हुए उद्दण्ड नृत्य करने लगे ।

दोनो भक्तोंकी इस प्रेममयी स्थितिसे स्वयं भगवान् भी प्रेममग्न हो गये । उनकी भी वैसी ही स्थिति हो गयी । भगवान्की तो यह प्रतिज्ञा ही ठहरी—

ये यथा मा प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।

(गीता ४ । ११)

'जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ।'

यों कुछ समयतक विचित्र प्रेमराज्यकी प्रगाढ स्थितिमे रहनेके अनन्तर तीनोको जब बाह्य चेतना हुई, तब वे प्रेममें मुग्ध हुए परस्पर बातचीत करने लगे। तदनन्तर भगवान् उस भक्तके साथ विमानमे बैठकर परमधाममे पधार गये और नारदजी प्रेममे विभोर होकर भगवद्गुणानुवाद गाते हुए अपने गन्तव्य स्थानकी ओर चल दिये।

इस प्रसङ्गसे हमे यह शिक्षा लेनी चाहिये कि समस्त क्रियाओमे भगवान्‌की भक्ति उत्तम है तथा उस भक्तिके साथ निष्काम और अनन्य प्रेमभावका समावेश होनेपर फिर भगवान्‌के मिलनेमें एक क्षणका भी विलम्ब नहीं होता। इसलिये उपर्युक्त प्रकारसे निष्काम अनन्य प्रेमभावपूर्वक ही निरन्तर भजन-ध्यानादि उत्तम क्रिया करनी चाहिये।
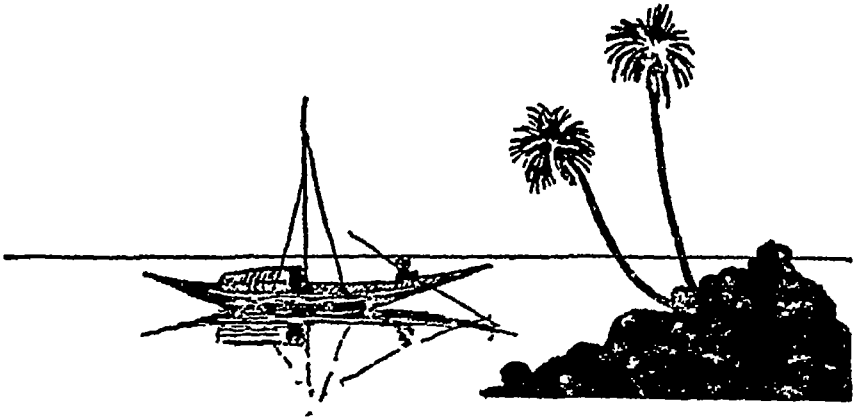
प्रवीर * का अलौकिक भगवत्प्रेम

प्रवीर माहिष्मती नगरीके नरेश श्रीनीलध्वजके पुत्र थे । इनकी जननी जुन्हादेवी सरल, साध्वी एव धर्मपरायणा थीं । भगवद्भक्तिके साथ-साथ वे बडी स्वाभिमानिनी, वीराङ्गना और धैर्यशीला भी थीं । इनके अत्यन्त पवित्र जीवनका प्रभाव इनके पुत्र प्रवीरपर पूर्णतया पडा । फलत प्रवीरमे भी सरलता, सौजन्य, सत्प्रेम और भगवद्भक्ति कूट-कूटकर भर गयी । वीरता उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गसे छलकती दीखती थी, पर वे निरन्तर भगवच्चिन्तन एव उनके प्रेममे तन्मय रहा करते थे ।

उन दिनो इन्द्रप्रस्थमे कौरवोको पराजित कर धर्मराज श्रीयुधिष्ठिर महाराज राज्य कर रहे थे । उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके परामर्शसे अश्वमेध-यज्ञ करनेका निश्चय किया । अश्व छोडा गया । उसकी रक्षाके लिये धनुर्धर अर्जुन नियत हुए । उनके साथ विशाल वाहिनी थी । यात्राके पूर्व भगवान् श्रीकृष्णने भी अर्जुनके साथ चलनेकी इच्छा प्रकट की, किंतु इस छोटे-से कार्यके लिये आपको कष्ट देना अपेक्षित नहीं । भूमण्डलपर विजय प्राप्त कर लेनेके लिये तो मैं और यह सेना ही पर्याप्त है—कहकर अर्जुन चल पडे । अर्जुनके मुखपर छिपी अभिमानकी रेखा चमक रही थी ।

'वीरवर अर्जुनके साथ युद्ध करनेका जिन्हे साहस हो, वे इस

---

* बगालके प्रचलित लीलाभिनयो (यात्राओ) में प्रवीरकी लीला की जाती है । वह बडी ही सुन्दर और मनोहर है । यह आख्यायिका उसीके आधारपर लिखी गयी है । यह कहाँतक सच्ची है, इसका पता नहीं । प्रवीरकी कथा 'जैमिनीयाश्वमेध'में भी आती है, पर, वह अन्य रूपमें है ।

अश्वको पकड़ें, अन्यथा उपहारसहित महाराज युधिष्ठिरके अश्वमेध-यज्ञमें नियत समयपर उपस्थित हों ।'—अश्वके मस्तकपर स्वर्णपत्रमें लिखा हुआ था । सबके आगे झूमता हुआ अश्व चला जा रहा था और उसके पीछे वीरवर अर्जुनके साथ सशस्त्र विपुल वाहिनी चल रही थी ।

कोई नहीं दीखता था, जो अश्वकी ओर पूर्णतया देखनेका साहस कर सके । पथमे जितने भी राजा-महाराजा मिले, सबने सर्वत्र स्वागत किया और युधिष्ठिर महाराजकी अधीनता स्वीकार की । इसी प्रकार वह अश्व माहिष्मतीके समीप पहुँचा ।

प्रवीरके पिता माहिष्मतीनरेश नीलध्वज अर्जुनका नाम सुनते ही सशङ्क हो गये । उन्होंने अश्वको न पकड़नेमे ही कुशल समझी, पर इस संवादसे वीराङ्गना जुन्हादेवी क्षुब्ध हो गयीं । उन्होंने अपने पतिदेवके इस कृत्यको कायरता समझा तथा ऐसे अनेक प्रयत्न किये, जिससे वे अपने क्षत्रियत्वकी प्रतिष्ठा-रक्षार्थ अर्जुनसे युद्ध करनेके लिये प्रस्तुत हो जायँ, पर नीलध्वज अपने निश्चयसे विचलित नहीं हुए ।

पतिसे निराश होते ही जुन्हादेवी अपने प्राणप्रिय पुत्र भक्त प्रवीरके समीप गयीं और उसे प्रतिष्ठा-रक्षार्थ समरमें डट जानेके लिये प्रोत्साहित करती हुई बोलीं—'बेटा । मैं तुम्हें अपने प्राणोसे अधिक प्यार करती हूँ, साथ ही तुमसे देश, ज़ाति और स्वाभिमानकी रक्षाकी आशा भी करती हूँ । अर्जुनकी विशाल वाहिनी अश्वमेधके अश्वके साथ तुम्हारे क्षत्रियत्वको, तुम्हारी वीरताको, तुम्हारी स्वतन्त्रता एव तुम्हारे देशाभिमानको ललकार रही है । पर मैं चाहती हूँ कि वह यहाँसे विजयोन्मत्त बनकर न जा सके । तुम उठो, अति शीघ्र उठो । अश्वमेधके अश्वको पकडकर अर्जुनको उलटे पाँव लौटनेके लिये विवश कर दो । उनकी मदोन्मत्त चतुरङ्गिणीको अपने तीक्ष्ण शरोंसे बेधकर एक क्षणके लिये भी यहाँ टिकने न दो ।'

'माँ! श्रीकृष्ण-सारथि वीरवर अर्जुन! ...' प्रवीर चकित होकर बोल भी नहीं पाया कि उसकी स्नेहमयी जननीने दुर्गाकी भाँति हुकार करके कहा—'हाँ, वही अर्जुन। यदि तुझे एक क्षण भी विचार करना हो तो स्पष्ट बोल, मैं स्वय युद्ध करनेके लिये अर्जुनके विशाल सैन्यमें प्रवेश करूँगी। मैं समझूँगी कि मैंने पुत्रको जन्म ही नहीं दिया था।'

'आज्ञा शिरोधार्य है माता। तुम निश्चय ही अन्त.पुरमें जाओ।' प्रवीरके इस कथनसे सतुष्ट हो माता भीतर चली गयी और प्रवीरने अर्जुनके पास पत्र भेजा—'मैं आपका अश्व रोक रहा हूँ। आप रणाङ्गणमे आ जाइये।'

दूत उत्तर ले आया। वीर प्रवीरने पढा—'वीर। क्षत्रियोचित पत्र पढकर मुझे प्रसन्नता हुई; एतदर्थ अत्यन्त प्रसन्न होकर मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूँ, किंतु तुम अभी नन्हें बच्चे हो। जीवनका आनन्द छोडकर मृत्यु-मुखमे जानेके लिये मचलना अच्छा नहीं।' प्रवीरने तुरत पत्र लिखा—'वीरवर। कायरतापूर्ण वाणी आपको शोभा नहीं देती। युद्ध करनेकी इच्छा न हो तो आप इन्द्रप्रस्थ लौट जा सकते हैं। अश्वको मैं नहीं छोड सकूँगा।'

फिर क्या था। दूसरे दिन अरुणोदय होते ही समर छिड गया। भयंकर युद्ध हुआ। भक्तवर वीर प्रवीरके पैने बाणोसे अर्जुन आकुल हो उठे। उन्होंने प्रद्युम्नसे कहा—'प्रवीरकी सुकुमारताका विचार छोड़कर तुम शरवर्षा करो।' पर प्रद्युम्नने तुरत कहा—'आपकी भाँति वीर प्रवीर भी मेरे पिताजीके प्रिय भक्त हैं। अत इनकी भक्तिका ध्यान आनेपर मेरा हाथ शिथिल पड जाता है और मैं पूरे वेगसे युद्ध नहीं कर सकता।' इसके बाद महाबली भीम आगे आये, किंतु भगवच्चरणाश्रित भगवान्‌के बलसे बलवान् प्रवीरके चुटीले तीरोंके सामने उनकी एक न चली। यह दशा देखकर अत्यन्त क्रोधसे अर्जुनने

आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया, पर अग्निकी भीषण ज्वालाएँ प्रवीरके बाणोंकी वारिधाराके सामने शीतल हो गयीं। इसी प्रकार अर्जुनने जिन-जिन भयंकर एव विषैले बाणोंको प्रवीरका मस्तक छिन्न करनेके लिये चलाया, वे सभी व्यर्थ सिद्ध हुए। राजकुमार प्रवीरने अर्जुनसमेत उनके सैन्यको विकल एव पराजित कर दिया।

अर्जुनके वीरत्वदीप्त मुख-मण्डलपर विषादकी कालिमा छा गयी। उसी समय प्रवीरने आकर कहा—'वीरवर अर्जुन! अश्वमेधका घोडा इसी बलपर छोड़ा था? मैं आपको स्पष्ट बता देता हूँ कि यदि आपको अपने प्राण प्यारे न हों, तब तो आप कल पुन समर-भूमिमें आइयेगा, अन्यथा अब सुखपूर्वक लौट जाइये और यहाँ उस दिन उपहार लेकर आइये, जिस दिन इस घोडेसे मैं अश्वमेध यज्ञ करूँगा। आप भगवान् श्रीकृष्णकी सहायताके बिना मुझपर विजय कभी नहीं पा सकते। मुझे जीतनेकी आकाङ्क्षा मनमे हो तो श्रीकृष्णको बुलाइये, उनके दर्शन करके मैं भी कृतकृत्य हो जाऊँगा।' प्रवीर कुछ क्षणोके लिये भगवान्के ध्यानमें तन्मय हो गया।

पर प्रवीरकी वाणी अर्जुनके हृदयमे तीरकी भाँति प्रवेश कर गयी। उन्होंने अब भगवान्के सामने अभिमानभरी वाणीमें कहनेकी अपनी भूलका अनुभव किया। तुरत व्याकुल होकर भगवान्से प्रार्थना की—'हे हरि! हे गोविन्द!! हे वासुदेव!!! हे नारायण!!!! मेरी अनुचित वाणीके लिये क्षमा करे। आप सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् और सर्वेश्वर है। आप शीघ्र आकर मेरी रक्षा करे।' अर्जुनकी पुकार सुनते ही भक्त-भय-भञ्जन भगवान् तुरत वहाँ प्रकट हो गये, मानो अबतक यहीं कहीं छिपे थे।

भगवान्को देखते ही अर्जुन उनके चरणोमे गिर पडे। प्रभुने दृष्टि फेरी तो देखा, प्रवीर भी प्रभुके पावन चरणोंमें दण्डकी भाँति लेटकर

प्रणिपात कर रहा है । भगवान् अर्जुन और प्रवीर दोनोंसे मिले । प्रवीर गद्‌गद हो रहा था । हर्षातिरेकसे उसने कहा—'प्रभो! आपके दर्शन पाकर आज मैं धन्य हो गया ।' उसने फिर अर्जुनसे कहा—'पार्थ! मैं आपका भी ऋणी हूँ । आपकी ही कृपासे मुझे आज श्यामसुन्दरकी त्रैलोक्यपावनी मधुर मनोहर झाँकीके दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है । अब हम अपने शिविरमे चलें । कलसे भगवान्‌के सामने ही युद्ध होगा । फिर दोनों अपने-अपने शिविरोंमें चले गये ।

प्रवीरको देखते ही देवी जुन्हाने उन्हे छातीसे चिपका लिया और कहा—'बेटा! तुम्हारी विजयके लिये मैं भगवती भागीरथीकी आराधना करने जा रही हूँ ।' प्रवीरकी वीरहृदया धर्मप्राणा पत्नी मदनमञ्जरीने अत्यन्त आनन्द प्रदर्शित करते हुए कहा—'भगवान् श्रीकृष्णको अपनी भक्तिसे प्रसन्न करके मैं भी आपकी विजयके लिये उनसे प्रार्थना करूँगी ।' प्रवीर भी भगवान्‌के ध्यानमे तल्लीन था ।

आधी रात बीत गयी । इधर प्रवीरपत्नी मदनमञ्जरीने अर्जुनके सुपुप्त सैन्यमे प्रवेश किया । उसके हाथमें लम्बी नगी तलवार थी । प्रहरीके स्थानपर भगवान् शकर त्रिशूल लिये खडे थे । उन्होंने मदनमञ्जरीका परिचय और अर्धरात्रिमे नगी तलवार लेकर शिविरमें आनेका कारण पूछा ।

मदनमञ्जरीने नि सकोच सत्य कह दिया—'मैं प्रवीर-पत्नी हूँ । अपने पतिके प्राणोंकी रक्षाके लिये भगवान् श्रीकृष्णके पास जाना चाहती हूँ ।'

भगवान् शकर बोल उठे—'यह सम्भव नहीं । भगवान् सो रहे हैं । तुम वापस लौट जाओ ।'

'यदि ऐसा ही है तो फिर आपके ही चरणोमें यह मस्तक अभी लोट जायगा'- कहते हुए मदनमञ्जरीने तलवार ऊपर उठा ली ।

भगवान् शकरने अपना परिचय देते हुए कहा—'मैं तुमपर अत्यन्त

प्रसन्न हूँ और कैलास जा रहा हूँ। यहाँसे प्रयाण करनेके पश्चात् मेरा कोई दायित्व नहीं है।'

मदनमञ्जरी श्रीकृष्ण-शिविरके द्वारपर पहुँची तो द्वारपालने डाँटते हुए वहाँ उपस्थित होनेका कारण पूछा। मदनमञ्जरीने विनम्रतासे द्वारपालको भी उत्तर दिया—'अपने प्राणधनके प्राणोंकी भीख माँगने महाराज नीलध्वजकी पुत्र-वधू भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंके समीप जाना चाहती है।'

द्वारपालने कहा—'यहाँसे लौट जाओ। प्रभु इस समय शयन कर रहे हैं।'

मदनमञ्जरीने तलवार तान ली और कहा—'यदि आप भगवान्के समीप नहीं जाने देते तो मैं अभी अपना मस्तक काटकर आपके चरणोंमें समर्पित करती हूँ।'

द्वारपालने मदनमञ्जरीका हाथ पकड लिया, पर उसने देखा—ये तो वे ही त्रैलोक्यनाथ मदनमोहन श्यामसुन्दर भगवान् श्रीकृष्ण है, जिनके लिये वह प्राणोंपर खेलकर आयी थी। वह प्रभुके चरणोपर लोट गयी। कुछ देर बाद उसने कहा—'प्रभो! आप तो अन्तर्यामी हैं, पर कहे विना मुझसे रहा नहीं जाता। प्रातःकाल ही धनुर्धर अर्जुनसे मेरे पतिदेवका युद्ध होगा। धनुर्धर अर्जुनको आपकी सहायता प्राप्त है और आपकी सहायता पाकर वे जो चाहे कर सकते हैं। इस कारण मैं आपसे अपने जीवन-धनके प्राणोकी भीख माँगती हूँ।'

अपनी कौमोदकी गदा और सहस्रार सुदर्शनचक्र उसके हाथमें देते हुए भक्तवत्सल करुणामय भगवान्ने कह दिया—'इसे जबतक प्रवीर अपने पास रखेगा, युद्धमें उसे कोई नहीं मार सकेगा।' मदनमञ्जरीने भगवान्के चरणोंमे प्रणाम किया और द्रुतगतिसे लौटकर दोनो आयुध अपने पतिको दे दिये। भगवान्की बात भी बता

उधर धर्मपरायणा जुन्हादेवीने श्रीगङ्गाजीको सतुष्ट

श्रीशिवजीसे प्रार्थना करनेके लिये कहा कि 'वे अपने त्रिशूलके साथ प्रवीरकी ओरसे युद्ध करें। श्रीगङ्गाजीकी प्रार्थना सुनते ही आशुतोषने कहा—'अर्जुनके साथ श्रीकृष्ण हैं और उनके सामने समरभूमिमें उतरना मेरे लिये सम्भव नहीं।'

प्रातःकाल होते ही अर्जुन अपने सखा श्रीकृष्णके पास पहुँचे तो देखा कि वे उदास और चिन्तित मुद्रामें अवनतमुख बैठे हैं। अर्जुनको देखते ही उन्होंने कहा—'बन्धुवर! प्रवीर-पत्नीकी भक्तिसे संतुष्ट होकर अपने दोनों आयुध मैंने उसे समर्पित कर दिये और जबतक वे आयुध उसके पास हैं, तुम उसका कोई अनिष्ट नहीं कर सकते। मेरी उपस्थितिसे प्रत्येक समय तुम्हारे शुभमें विघ्न ही उपस्थित हो जाता है।'

भगवान्‌की वाणी सुनते ही भीम क्रुद्ध हो गये। उन्होंने कहा—'आपको सोच-विचारकर वरदान देना था। आप हमारी रक्षा करनेके लिये आये हैं कि और भी विपत्ति लादनेके लिये यहाँ पहुँचे हैं।' पर भीमको बड़ी विनयसे चुप कराते हुए अर्जुनने सरल विश्वासपूर्वक भगवान्‌से विनम्र शब्दोंमें कहा—'यह क्या कहते हैं प्रभो! आपकी प्रत्येक क्रियामें मङ्गल छिपा है, इसपर मेरा दृढ़ विश्वास है। इस आयुध-दानमें भी मेरा कोई हित ही है। मैं पूर्ण निश्चिन्त हूँ। आप मेरे सर्वस्व हैं। आपने ही इस यज्ञके अनुष्ठानकी प्रेरणा एवं इसकी निर्विघ्न समाप्तिका वचन दिया है। आप जैसा उचित समझें, वैसा करें।'

भगवान् श्रीकृष्ण चुप थे। उन्हें अपने ऊपर निर्भर अर्जुनकी चिन्ता थी। वे बोल नहीं पा रहे थे। अर्जुनने पुनः कहा—'प्रभो! प्रातः हो चला। युद्धका समय आना ही चाहता है। अब आपकी क्या आज्ञा है?'

भगवान्‌ने कहा—'आओ, श्रीशंकरजीके पास चलें। वे कोई युक्ति

सोचकर बता सकते हैं । वे दोनो भगवान् श्रीशकरजीके समीप गये । वहाँ श्रीकृष्णने कहा—भगवन् ! प्रवीर-पत्नीकी भक्तिपर मुग्ध होकर मैंने अपनी कौमोदकी गदा तथा चक्र भी उसके पतिके लिये दे दिया । वे जवतक प्रवीरके पास रहेंगे, युद्धमे उसे कोई नहीं मार सकेगा । अब अर्जुन कैसे विजयी हों, इसीका उपाय जाननेके लिये हम दोनों आपकी सेवामें आये हैं ।'

श्रीशकरजी बोले—'सर्वज्ञ होकर भी आपने उसे वरदान कैसे दे दिया ?' श्रीकृष्णने उत्तर दिया—'जिस प्रकार उसकी भक्तिपर मुग्ध होकर आप रात्रिमें कैलास चले आये, उसी प्रकार भक्ति-विवश होकर मुझे भी वरदान देना पडा ।'

भगवान् शकरने धीरे-धीरे कहा—'मैं भी बडे असमञ्जसमें पड गया हूँ । उधर प्रवीरकी माता जुन्हाकी आराधनासे सतुष्ट होकर श्रीगङ्गाजी प्रवीरके पक्षमें त्रिशूल लेकर अर्जुनसे युद्ध करनेके लिये आग्रह कर रही हैं । इधर आपका अनुरोध है । ऐसी दशामे मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं किसी भी पक्षकी ओरसे युद्धभूमिमें नहीं उतरूँगा ।'

निराशाभरे स्वरोंमें भगवान्ने अर्जुनसे कहा—'भाई अर्जुन ! मेरी पहुँच तो यहींतक थी और इन्होंने स्पष्ट उत्तर दे दिया । अब क्या किया जाय ।' अर्जुनने उत्तर दिया—'महाराज ! मैं तो कुछ नहीं जानता । मैं केवल इतना ही जानता हूँ कि आप जो कुछ करेंगे, उसीमें मेरा अवश्य हित होगा । हाँ, युद्धका समय समीप आ रहा है ।'

भगवान्ने एक क्षण सोचा और फिर वे अर्जुनके साथ भगवती उमाके पास गये । वहाँ उन्होने श्रीयुधिष्ठिर महाराजके अश्वमेध-यज्ञानुष्ठान एव प्रवीरकी बाधा तथा अपने आयुधद्वय और वरदान देनेकी बात भी सुना दी एव अर्जुनकी विजयकी प्रार्थना करते हुए कहा कि 'यदि आप समरभूमिमें मोहिनीरूपमें आकर उससे आयुध ले लें तो हम

दोनो निश्चिन्त हो जायँ ।' भगवती उमाने 'तथास्तु' कह दिया। श्रीकृष्ण तो यही चाहते थे । अर्जुनके साथ लौट पड़े ।

अर्जुन युद्धभूमिमे पहुँचे तो उन्होंने देखा—प्रवीर अपनी विशाल वाहिनीके साथ युद्धकी प्रतीक्षा कर रहा है । युद्ध प्रारम्भ होना ही चाहता था कि प्रवीरने, अपनी आँखोके सामने आकाशमे एक नवयौवनसम्पन्ना अपूर्व लावण्यवती सुन्दरीको देखा । विश्वमें ऐसी सुन्दरता होती है, इसकी उसे कल्पना भी नहीं थी । भगवान्‌की अघटन-घटना-पटीयसी मायाने जितेन्द्रिय भक्त प्रवीरकी मतिमें मोह उत्पन्न कर दिया और वह एक विषयी कामासक्त मनुष्यकी भाँति उस देवीसे प्रणय-याचना करने लगा । मायाकी ऐसी ही महिमा है ।

परम सुन्दरी देवीने कहा—'युद्धभूमिमे प्रेमकी बात प्रलाप-सी लगती है । यदि तुम सचमुच प्रेमदान चाहते हो तो अपने आयुध फेंक दो ।' मायामोहित प्रवीर इस समय मूढ बन गया था । उसने श्रीकृष्णप्रदत्त दोनो आयुध फेंक दिये । भगवती उन्हे उठाकर तुरत अन्तर्धान हो गयीं । मायाका पर्दा हटा, प्रवीरकी आँखे खुलीं तो उसने मन-ही-मन पश्चात्ताप करते हुए कहा कि 'मैंने क्या अनर्थ कर डाला ।'

अन्तमे उसने सोचा—कदाचित् यह कार्य भगवान्‌ने ही किया है । प्रेमपूर्वक रोष प्रकट करते हुए उसने भगवान्‌से कहा—'प्रभो ! वे अस्त्र यदि माया करके ले ही लेने थे तो आपने देनेका नाट्य क्यो किया ?' भगवान्‌ने उत्तरमे कहा—'प्रियवर प्रवीर ! मैंने अस्त्र नहीं लिये हैं । यदि मुझे ही उन्हें लेना होता तो मै देता ही क्यों ?' प्रवीर तुरत बोल उठा—'प्रभो ! यदि ऐसी बात है तो आपके लिये अर्जुनकी सहायता करना उचित नही । मैं भी आपको अपने प्राणोंसे अधिक मानता हूँ। आपके चरणमें मेरी अनुरक्ति कम नहीं है ।'

प्रवीरकी बात सुनते ही अर्जुनने कहा—'प्रभो ! मैंने आपको युद्धमें

सहायता देनेके लिये बुलाया है । प्रवीरमे शक्ति न हो तो अश्व छोड दे ।' प्रवीरने रोषपूर्वक उत्तर दिया—'अश्व मैंने छोडनेके लिये नहीं पकडा है ।' फिर क्या था—दोनो ओरसे घनघोर शर-वर्षा होने लगी । आकाश तीखे बाणोंसे आच्छादित हो गया, पर अर्जुनकी एक न चली, वे पराजित होने लगे ।

भगवान्ने कहा—'अर्जुन ! प्रवीरके प्रभावको देख लो । मेरे सहायता करनेपर भी वह तुम्हे पराजित कर रहा है ।' अनवरत बाण-वर्षा करते हुए अर्जुनने उत्तर दिया—'प्रभो ! इसीलिये तो मैंने आपको बुलाया है । अब मै आपकी कृपासे इसे तुरत पराजित कर देता हूँ ।'

अर्जुनने अपने पैने बाण चलाये, पर प्रवीरने उन्हें बीचमें ही खण्ड-खण्ड कर दिया । अर्जुन जो भी अस्त्र क्रुद्ध होकर चलाते, प्रवीर उसे ही नष्ट कर देता, पर अन्तत उस दिन अर्जुनने प्रवीरको पराजित किया ।

प्रवीरने रोषपूर्वक कहा—'अर्जुन ! इसे मै आपकी नही, अपितु प्रभुकी विजय मानता हूँ । प्रभुके बिना आप मुझे पराजित कर दे तो मैं आपको वीर समझूँ ।' अर्जुन बोले—'मैंने जब भगवान्को बुलाया है, तब उन्हे क्यो छोडूँ । तुम्हे युद्ध न करना हो तो वापस चले जाओ ।'

अर्जुनकी यह बात सुनते ही भक्त प्रवीरने कहा—'स्वामिन् ! आप तो सबके हैं, फिर युद्धभूमिमे यह पक्षपात कैसा !' इसी क्षण उसने प्रभुकी विश्वमोहिनी मुसकान देखी । फिर क्या था । उन्हे सतुष्ट देखकर प्रवीरने अर्जुनके रथसे खींचकर उनको अपने रथपर बैठा लिया । भगवान्ने लगाम ले ली । अत्यन्त गर्वके साथ प्रवीरने कहा—'अर्जुन ! अब जीभर युद्ध कर ले । अब आपको या तो प्राण लेकर भागना पडेगा या सदाके लिये यहीं रणभूमिमे शयन करना होगा ।'

प्रवीरको कोई भी उत्तर न देकर अर्जुनने भगवान्से कहा —'भगवन् !

मैं आपके बिना नहीं जी सकता। आप मेरे रथपर आ जाइये। आपको मैंने बुलाया है।' इसपर भगवान्‌ने अर्जुनके रथपर आकर घोडोकी लगाम सँभाल ली।

उदास होकर प्रवीरने कहा—'प्रभो! कम-से-कम एक युद्धमें तो आप मेरे सारथि बन जाते।' फिर उसने अर्जुनसे कहा—'आज मैं आपका पौरुष देखूँगा।'

अर्जुन बडी सावधानीसे अपने तीक्ष्ण शरोकी वर्षा करने लगे, पर प्रवीर साधारण वीर नहीं था। उसके सामने अर्जुन विचलित होने लगे। इसी बीचमें भगवान् बोल उठे—'मेरी सहायता पाकर भी तुम विजय नहीं प्राप्त कर रहे हो?' प्रबल आग्नेयास्त्र फेंकते हुए अर्जुनने कहा—'महाराज! थोडा धैर्य रखिये, मैं इसे अभी परास्त करता हूँ।'

परतु वे विफल रहे। अन्य कई दिव्यास्त्रोंके प्रयोगसे प्रवीर परास्त हुआ, पर उसने अर्जुनको फटकारते हुए कहा—'दूसरोंके बलपर युद्ध करनेवाले शूर नहीं कहे जाते। भगवान्‌के बिना आप मुझे परास्त कर सके, ऐसी सामर्थ्यका आपमे लेश भी नहीं है।'

फिर उसने भगवान्‌से कहा—'प्रभो! आप हम दोनोंके हैं। आप अब अर्जुनका रथ हाँकना छोडकर निष्पक्षभावसे हम दोनोंका युद्ध-कौशल देखे, फिर आप समझ लेंगे कि वस्तुत वीर योद्धा कौन है और आज अर्जुन भी समरका स्वाद चख सकेगे।'

भगवान् हँसने लगे। भक्तवर प्रवीरने भगवान्‌को सतुष्ट जानकर पुन उनको अर्जुनके रथसे खींच लिया और पासके ही तालवृक्षसे बाँध दिया। फिर उसने अर्जुनसे कहा—'अर्जुन! अब आप अपनी वीरताका परिचय दीजिये। अब मैं आपको युद्ध करनेका फल चखाता हूँ।' पर अर्जुनने करुण नेत्रोंसे भगवान्‌की ओर देखकर कहा—'प्रभो!

क्या मैंने आपको इसीलिये बुलाया था? कौरवोकी सभामे जब महाबलशाली योद्धा भी आपको नही बाँध सके, तब यहाँ आप कैसे बँध गये? मैं व्याकुल हो रहा हूँ, देव। आप शीघ्र आइये, मेरे रथकी बागडोर सँभालिये।' जिनके एक नामसे सारे बन्धन कट जाते हैं, वे ही अचिन्त्यशक्ति भगवान् आज अपने प्रेमी भक्तकी प्रेमरज्जुसे बँधे हैं, पर दूसरी ओर भी वैसा ही भक्त है। उसकी दीन वाणी भी भगवान्‌को खींच रही है। भगवान् अर्जुनकी दीन वाणी सुनते ही रस्सी तुडाकर उसके रथपर आकर बैठ गये और रथ हाँकने लगे। भगवान्‌की आज विचित्र दशा है। वे प्रेमी भक्तोकी खींचातानीमें प्रेममय होकर आश्चर्यमयी क्रीडा कर रहे हैं।

प्रवीरसे रहा नहीं गया। उसने पुन भगवान्‌से कहा—'प्रभो! बडा आश्चर्य है, कुछ क्षण भी तटस्थ होकर आप दो भक्तोका युद्ध और वीरत्व तो देखते। पर आपकी जैसी इच्छा!' उसने पुन अर्जुनको सम्बोधित कर कहा—'वीरता नामकी कोई वस्तु आपमें नही है। दूसरोके सहारे वीरोंको पराजित करनेका प्रयत्न तो समरभूमिमें बडा ही अशोभन है।' और उसने रोपमे आकर इतने तीक्ष्ण शरो एव दिव्यायुधोंकी वर्षा की कि अर्जुन विकल हो उठे और उनकी सारी सेना क्षत-विक्षत होकर छिन्न-भिन्न हो गयी। यहाँ भी भगवान्‌की ही लीला कार्य कर रही थी।

इसपर आश्चर्य प्रकट करते हुए भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'जब एक प्रवीरके सम्मुख ही तुम्हारी यह दशा है, तब तुम अन्य योद्धाओंके सामने क्या कर सकोगे?' अर्जुनने तुरत अपनी भागती हुई सेना को क्षत्रियोंकी वीरगति एव उनकी मर्यादाका ध्यान दिलाकर युद्धके लिये प्रोत्साहित किया। विशाल वाहिनी पुन पूरी शक्तिसे प्रवीरकी सेनासे भिड गयी। अर्जुन भी अपने बाणोंकी अपूर्व वर्षामे सलग्न हो गये। दोनो पक्ष अपनी विजयके लिये शक्ति-प्रयोग कर रहे थे। इस

प्रकार होते-होते अन्तमे आज प्रवीर हार गया और अर्जुनकी विजय हुई ।

किंतु वीर प्रवीरको तनिक भी चिन्ता नहीं थी । उसने पुन अर्जुनको डॉटा—'अर्जुन ! आप सच्चे वीरत्वको स्वीकार कीजिये । यदि श्रीकृष्णके बिना आप युद्ध करे तो आपको प्राणरक्षामें भी कठिनता हो जाय ।' फिर उसने भगवान्से कहा—'स्वामिन् ! मै भी आपका भक्त हूँ, पर आज आप अबतक अर्जुनमे और मुझमें अन्तर समझते हैं । ऐसा क्यों करते हैं, नाथ ! मुझे आपसे बडी आशा है ।'

भगवान् हँस पडे । प्रवीरने उन्हे अपने अनुकूल समझकर तुरत खींच लिया और पासके ही तालवृक्षसे पुन कसकर बाँधते हुए कहा—'प्रभो ! अबकी बार प्रतिज्ञा कीजिये कि किसीका पक्ष न लेकर निष्पक्षभावसे युद्ध देखूँगा ।' प्रभुने हँसते हुए मौन स्वीकृति दे दी ।

फिर क्या था, प्रवीर झटसे कूदकर अपने रथपर जा चढा और शर-सधान करते हुए बोला—'पार्थ ! अब आप प्राण बचाकर भागने या यहीं सदाके लिये सो जानेको प्रस्तुत हो जाइये ।' प्रभु प्रतिज्ञाबद्ध हो चुके हैं । प्रभु बँधे हुए हँस रहे थे, मानो आज उन्हे अपनी इस विवशतामें ही आनन्द मिल रहा है ।

पर अर्जुन प्रभुकी ओर देख रहे थे । उन्होंने कहा—'देव ! यह क्या लीला कर रहे हैं । मेरे प्राणोंपर आ बनी है । अब मैं अधीर हो गया हूँ । कौरव-युद्धके समय आपने मेरी रक्षाके लिये शस्त्रग्रहण न करनेकी प्रतिज्ञा की थी, पर भक्तके लिये उसे तोड दिया । वही आपका प्राणप्रिय अर्जुन मरना चाहता है, इसलिये आज फिर प्रतिज्ञा तोडिये और शीघ्र आकर मेरी रक्षा कीजिये ।' भगवान् तुरत अर्जुनके रथपर प्रकट हो गये । वे वैसे ही हँस रहे थे ।

प्रवीरने व्याकुल होकर कहा—'प्रभो ! यह आपने क्या किया ? आपने अपनी प्रतिज्ञा भी तोड दी ।' भगवान्ने तुरत कहा—'मैंने तो

कोई प्रतिज्ञा नहीं की थी ।'

भक्त प्रवीरने प्रणय-रोषसे कहा—'प्रभो। आप असत्य बोलेंगे तो ससारकी क्या दशा होगी । आपने प्रतिज्ञा की थी कि मैं चुपचाप युद्ध देखूँगा, पर आप पुन अर्जुनके रथपर आकर बैठ गये ।'

भगवान्ने कहा—'जिसने प्रतिज्ञा की थी, उससे कहो भैया।' प्रवीरने तालवृक्षकी ओर देखा तो भगवान् वहीं बँधे खड़े थे । उसने एक बार तालवृक्ष और एक बार अर्जुनके रथकी ओर देखा । अब एक ही भगवान्के दो रूप हो गये थे । प्रवीरने अर्जुनसे कहा—'अर्जुन। आप महान् धन्य हैं और आपके माता-पिता सभी धन्य हैं, जिनके लिये भगवान्को दो रूप धारण करने पडे ।'

फिर प्रवीर तालवृक्षसे बँधे हुए भगवान्को देखने लगा । उसके हृदयमें छिपा हुआ प्रेमसमुद्र प्रकट होकर उमड चला । वह अपने-आपको भूल गया । भगवान्की नित्य-नव-नवायमान सुर-मुनि-मनमोहिनीरूप माधुरीने प्रवीरपर ऐसा विलक्षण जादू किया कि प्रवीरका बाह्य-ज्ञान सर्वथा लुप्त हो गया। वह उस अलौकिक रूप-सुधा-सागरमे डूब गया ।

इसी समय भगवान्ने अर्जुनसे कहा—'पार्थ। तुम अति शीघ्र प्रवीरका मस्तक उतार लो ।' अर्जुन बोले—'प्रभो। प्रवीर युद्ध छोडकर आपके ध्यानमें तल्लीन है, ऐसी अवस्थामे इसे मारना धर्मविरुद्ध है ।' भगवान् तुरत बोल उठे—'अर्जुन। मेरे भक्त प्रवीरको युद्धमें सम्मुख मार सकनेकी सामर्थ्य किसमे है? यह मेरी इच्छा है कि मेरा भक्त मेरे ध्यानमे निमग्न रहता हुआ ही मेरे परम धाममें पहुँच जाय । मेरी आज्ञा है, तुम इसे मार डालो । तुम्हे पाप नहीं लगेगा ।'

अर्जुनने एक अत्यन्त तीक्ष्ण अर्धचन्द्राकार दिव्य शर छोडा, जिससे प्रवीरका मस्तक कटकर उछला और भगवान्के चरणोमें जा

गिरा । उसमेसे एक परम निर्मल ज्योति निकली और वह श्रीभगवान्के मङ्गलमय श्रीविग्रहमे समा गयी । प्रवीरका प्राणान्त होते ही उसकी बची-खुची सेना भाग गयी । माहिष्मतीमें शोक छा गया ।

प्रवीरकी मृत्युका समाचार सुनकर उसके पिता विलाप करने लगे और पुत्र-शोकमे रोती हुई, परतु पुत्रकी वीर तथा भक्त-गतिसे गर्विता उसकी माताने कहा—'बेटा! तुम अर्जुनके बाणसे कटकर प्रभुके धाममे गये और मैं वीर क्षत्रियकुमारकी माता सिद्ध हुई । मेरा जन्म सफल हुआ ।'

इसी बीचमे भगवान् वहाँ आ पहुँचे । उन्होंने विलाप करती हुई जुन्हादेवीसे कहा—'आप चिन्ता न करे । यदि कहे तो प्रवीरको पुन जीवित कर दूँ ।' जुन्हादेवीने कहा—'प्रभो! आपके सम्मुख मृत्यु पाकर पुन कौन जीवित होना चाहेगा, पर मै चाहती हूँ कि हम दम्पतिको भी वही गति प्राप्त हो, जो आपने पुत्रको दी है?'

भगवान्ने 'तथास्तु' कहते हुए कहा—'अब महाराज नीलध्वज अर्जुनको आदरपूर्वक विदा करे तथा युधिष्ठिर महाराजके अश्वमेधयज्ञमें नियत समयपर भेटके साथ उपस्थित हो, वहाँपर पुन मेरा दर्शन होगा ।' और प्रभु अन्तर्धान हो गये ।

भगवान्के आदेशानुसार नीलध्वजने अर्जुनको अत्यन्त सत्कारपूर्वक विदा किया और वे भगवान्के भजनमे सलग्न हो गये । पतिव्रता मदनमञ्जरी भी पतिके साथ सती होकर भगवान्के परमधाममें पहुँच गयी ।
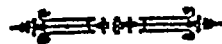
संसार-वाटिका

कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभृङ्ग-
- मीना हता. पञ्चभिरेव पञ्च ।
एक प्रमादी स कथं न हन्यते
य. सेवते पञ्चभिरेव पञ्च ॥

'हरिण, हाथी, पतग, भौंरा और मछली—ये पॉच जीव पॉचो विषयोंमेंसे एक-एकसे मारे जाते हैं, फिर जो प्रमादी अकेले ही अपनी पॉचों इन्द्रियोसे पाँचो विषयोंका सेवन करता है, वह क्यों न मारा जायगा ।'

अत मनुष्योंको उचित है कि विषयोंसे मन-इन्द्रियोंका संयम करके उन्हें परमात्माकी ओर लगायें । इस विषयमें एक दृष्टान्त है— एक चक्रवर्ती राजा थे । एक बार उन्होंने यह घोषणा की कि जो कोई मनुष्य कल मेरा दर्शन कर लेगा, उसे मैं युवराजपद दे दूँगा । मैं अपने जिस बगीचेकी कोठीमें निवास करता हूँ, वह कल दिनभर सबके लिये खुला रहेगा । मेरे पास कोई भी मनुष्य आ सकता है । किसीके लिये भी कोई रुकावट नहीं रहेगी । प्रत्येक मनुष्यको बगीचेमें सैर करनेके लिये केवल दो घंटा समय दिया जायगा । कोई भी व्यक्ति दो घटेसे अधिक नहीं रह सकता । बगीचेमें प्रवेश होनेके बाद मेरे पासतक पहुँचनेमें तो आधे मिनटका समय ही काफी है, क्योंकि वहाँकी सड़के बडी ही सुगम और सुलभ हैं । अत· जो मनुष्य नियत समयके अदर मेरा दर्शन कर लेगा, उसे तो युवराजपद दे दिया जायगा और जो बगीचेमें ही रमता रहेगा, उसे दो घटे समाप्त होते ही- बाहर निकाल दिया जायगा ।

यह घोषणा राज्यमें सर्वत्र प्रचारित कर दी गयी । फिर बात ही क्या थी, सब लोग प्रात काल होते ही बगीचेमे धडाधड प्रवेश करने लगे । बगीचेके दरवाजेपर ही प्रबन्धकर्ताका निवासस्थान था । वह प्रबन्धकर्ता, जो भी व्यक्ति बगीचेके अदर प्रवेश करता, उसे एक टिकट दे देता और उसकी एक नकल अपने पास रख लेता । इस प्रकार लोग टिकट ले-लेकर भीतर जाने लगे । बगीचेमे जाकर कोई तो नाना प्रकारके चमेली, केवडा, गुलाबके फूलोंको सूँघते हुए शीतल, मन्द, सुगन्धित हवामे सैर करने लगे । कितने ही उनसे आगे पहुँचकर मेवा और मधुर फल तोड-तोडकर खाने लगे । कितने ही उनसे भी आगे जाकर सरकस, बायस्कोप, सिनेमा, अजायबघर, खेल-तमाशे आदिको तथा रत्नोंकी ढेरियो और सोने-चाँदीके नाना प्रकारके सिक्कोको एव और भी अनेक प्रकारके पहले कभी न देखे हुए पदार्थोंको देखने लगे । कितने ही लोग उनसे भी आगे बढकर पुष्पोकी शय्यापर शयन करते हुए स्त्रियोके साथ रमण करने लगे और कितने ही मनुष्य उनसे भी आगे बढकर ग्रामोफोन-रेडियो आदिके गाने सुनने लगे । इस प्रकार वे लोग बगीचेके ऐश-आराम, भोगोमे फँसकर राजाके दर्शनसे निराश हो गये और अज्ञानवश यही सोचने लगे कि हमलोगोको राजाके दर्शन कहाँ ? उनमेंसे कोई एक, जो विरक्त पुरुष थे, जिनके मन-इन्द्रिय वशमे थे, वे उन ऐश-आराम, स्वाद-शौकीनीका तिरस्कार करके महाराजके पास जा पहुँचे और उनको महाराज साहेबने युवराजपद दे दिया ।

प्रबन्धकर्ताकी ओरसे उस बगीचेमे बहुत-से सिपाही घूमा करते थे । वे जिस मनुष्यका समय पूरा हो जाता था, उसका टिकट लेकर उसे बगीचेसे बाहर कर देते थे । परतु जो भाई पुष्पोकी सुगन्ध लेता हुआ हवाखोरी करता, वह कहता—'थोडी देर हमको और रहने दो ।' किंतु सिपाही तैनात किये हुए थे । कोई भी आदमी एक मिनट भी अधिक

कैसे रह सकता था । सिपाही उसे धक्का देकर बलपूर्वक बाहर निकाल देते थे । जो मेवा और मधुर फल तोड-तोडकर खा रहे थे, वे सिपाहियोसे कहने लगे कि 'भैया ! हमको दो मिनट और रहने दो । हमने जो मेवा और मधुर फल तोडे हैं, उनकी गठरी तो बॉध लें !' सिपाहियोंने कहा—'यहॉसे कोई कुछ भी बॉधकर नहीं ले जा सकता है । जो कुछ तुमने खा लिया, वही तुम्हारा है ।' यो कहकर उनकी गठरी-मुटरी छीन ली और उन्हे धक्का देकर बाहर निकाल दिया । जो खेल-तमाशा, सिनेमा आदि देख रहे थे, वे तो वहॉसे उठना ही नही चाहते थे, किंतु वहॉ कोई भी एक मिनट भी अधिक रह ही कैसे सकता था ? सिपाही उनको धक्के मारकर बलपूर्वक बाहर निकालने लगे । कितनोंने तो रुपया, मुहर और रत्नोंकी गठरी बॉध ली । सिपाहियोंने पूछा—'यह क्या है और तुमने यह गठरी क्यो बॉधी है ?' उन्होंने उत्तर दिया कि 'इनमें रुपये, मुहर तथा रत्न हैं, हम इनको अपने साथ ले जायँगे ।' सिपाही लोग उन्हे डडे मारने लगे और कहने लगे—'मूर्खो ! इनका तुम केवल दर्शन ही कर सकते हो, यहॉसे कोई भी आदमी एक पाई भी अपने साथ नही ले जा सकता ।' उन लोगोंको बॉधी हुई गठरी छोडनेमे बडा दु ख होता था, पर उपाय भी क्या, बाध्य होकर छोडना पडा । जो लोग पुष्पोकी शय्यापर सोकर स्त्रियोंके साथ रमण कर रहे थे, वे तो किसी प्रकार भी बाहर नहीं होना चाहते थे, पर बिना कानून कोई एक क्षण भी वहॉ कैसे रह सकता । सिपाहियोंने उनको भी अवधि समाप्त होते ही डडे मारकर निकाल बाहर किया और जो ग्रामोफोन, रेडियो आदि सुन रहे थे, उनको तो कुछ पता ही न रहा कि कितना समय बीत गया है । सिपाहियोने उनके टिकटोंका नम्बर देखकर कहा कि 'चलो, तुम्हारा समय हो गया ।' सुननेवालोंने कहा—'अरे भाई ! यह गाना तो पूरा सुन लेने दो ।' सिपाहियोंने कहा—

'तुम्हारा समय समाप्त हो गया है, तुम अब एक क्षण भी यहाँ नहीं रह सकते ।' यों कहकर उनको भी डडोसे मारकर बलपूर्वक बगीचेसे बाहर ढकेल दिया ।

यह एक कल्पित दृष्टान्त है । इसे दार्ष्टान्तरूपमें इस प्रकार समझना चाहिये कि चक्रवर्ती राजा यहाँ परमेश्वर हैं और उनका बगीचा ही यह ससार है । राजाकी घोषणा ही श्रुति-स्मृति आदि शास्त्र है । लोगोंका आना-जाना ही सर्ग है । बगीचेके लिये नियत किया हुआ दो घटेका समय ही मनुष्यकी आयु है । राजाके दर्शनमें किसीके लिये रुकावट नही है, यही मनुष्यमात्रके लिये ईश्वर-प्राप्तिमे स्वतन्त्रताकी घोषणा है । युवराजपद ही परम नि श्रेयस्की प्राप्ति है । सुगम और सुलभ सडकोंपर चलकर आधे मिनटमे मार्ग तय करना ही भक्ति आदि उच्चकोटिके सुगम साधनोंके द्वारा छ महीनेमें ईश्वर-साक्षात्कारका रास्ता तय करना है । प्रबन्धकर्ता धर्मराज है । टिकट देना ही आयु देना है । टिकटकी नकल अपने पास रखना ही आयुका हिसाब रखना है । बगीचेमें प्रवेश करना और वापस बाहर जाना ही मनुष्यका जन्मना-मरना है । बगीचेमे प्रवेश करके जो पुष्पादिका सुगन्ध लेते हुए हवा खाना है, यही यहाँ घ्राणेन्द्रियके वशीभूत हुए मनुष्योंका पुष्पमाला, इत्र, फुलेल, लवेंडर आदिकी सुगन्धमे अपना समय बरबाद करना है । बगीचेमे जो मेवा और मधुर फलोंका खाना है, वही यहाँ रसनेन्द्रियके वशीभूत हुए मनुष्योंका भोजनादिके रसस्वादमे समय व्यय करना है । बगीचेमें खेल-तमाशे आदिको देखना ही यहाँ चक्षु-इन्द्रियके वशीभूत हुए मनुष्योंका नाशवान् क्षणभङ्गुर आश्चर्यमय पदार्थोंको देखकर अपने अमूल्य समयको नष्ट करना है । बगीचेमें स्त्रियोंके साथ पुष्पोंकी शय्यापर रमण करना आदि ही यहाँ त्वचा-इन्द्रियके वशीभूत हुए मनुष्योका स्पर्शादिके द्वारा स्पर्श

करनेयोग्य नाशवान् क्षणभङ्गुर पदार्थोंका उपभोग करके अपने जीवनको खतरेमें डालना है । बगीचेमें ग्रामोफोन, रेडियो आदि सुनना ही यहाँ श्रोत्रेन्द्रियके वशीभूत हुए मनुष्योंका रसकी बातोंको सुनकर अपने जीवनके अमूल्य समयको बेकार नष्ट करना है । राजाके दर्शनसे निराश होना ही यहाँ परमात्माकी प्राप्तिमें श्रद्धाकी कमीके कारण होनेवाली साधनविषयक अकर्मण्यता है । बगीचेमें सीधे ही राजाके निकट जानेवाला जो मन-इन्द्रियोंका सयमी विरक्त पुरुष है, वही यहाँ परम साक्षात्कार-रूप सिद्धि प्राप्त करनेयोग्य उच्चकोटिका साधक है । बगीचेमे राजाका दर्शन करना ही भगवत्साक्षात्कार और युवराजपद ही परमपदकी प्राप्ति है । बगीचेमें घूमनेवाले प्रबन्धकर्ताके सिपाही इस ससारमें धर्मराजके दूत हैं । टिकटकी अवधिका शेष होना ही यहाँ मनुष्यकी आयुकी समाप्ति है । बगीचेसे लोगोंको बाहर कर देना ही यहाँ मनुष्योंको यमराजके हवाले कर देना है । बगीचेमें फलोंकी और रुपयोंकी गठरी बाँधना ही यहाँ मरनेके समय अज्ञान और स्नेहके कारण धन आदि पदार्थोंका सग्रह करना है । इच्छा न होनेपर भी उनको सिपाहियोंका डडा और धक्के मारकर बलपूर्वक बाहर निकाल देना ही यहाँ मरनेकी इच्छा न होनेपर भी यमदूतोंका बलात्कारसे यन्त्रणा देते हुए यमके द्वारपर ले जाना है, बगीचेसे मेवा-फल, रुपये आदि कोई भी पदार्थ साथमें नहीं ले जा सकना ही इस ससारके मेवा-मिष्टान्न, धन, स्त्री-पुरुष आदि पदार्थोंको यहीं छोडकर जाना है, क्योंकि इस ससारकी कोई भी—किंचिन्मात्र भी वस्तु किसी भी प्रकार न तो आजके पहले किसीके साथ गयी और न जा सकती है । इसलिये इन नाशवान् क्षणभङ्गुर पदार्थोंसे और विषयोसे वैराग्यपूर्वक मन-इन्द्रियोंको हटाकर परमात्मामें लगाना चाहिये ।

भगवान् छप्पर फाड़कर देते हैं

'आप दिनभर गीतापाठ करे और गीताके अनुसार जीवन बनानेके प्रयत्नमे लगे रहे, पर पेट-पूजाका भी तो थोडा ध्यान रखना चाहिये'—छोटे भाईने बडे भाईसे कहा । बडा भाई निरन्तर गीतापाठमें लगा रहता था । उसने सुन लिया था कि 'सम्पूर्ण गीतापाठकी अपेक्षा अर्थ और भावसहित एक अध्यायका प्रतिदिन पाठ कर लेना उत्तम है, किंतु गीताके साँचेमे अपना जीवन ढाल लेना तो सबसे उत्तम है । गीतामें बहुत-से ऐसे भी श्लोक हैं, जिनमेसे किसी एक श्लोकको अपने जीवनमे उतार लेनेसे कल्याण हो जाता है । उन चारो भाइयोमे यह बडा भाई गीताप्रेमी था । वह १२वें अध्यायके १७वे श्लोकको अपने जीवनमें उतारनेका प्रयत्न कर रहा था । छोटे भाईकी उपर्युक्त बात सुनकर भी वह चुप रहा ।

'धनोपार्जनके लिये हमारी तरह आपको भी श्रम करना पडेगा ।'—दूसरे छोटे भाईने कहा ।

'हम कबतक कमाकर खिलायेगे ?'—तीसरे ने भी उसीका समर्थन किया ।

'सबसे अच्छा यही है कि आप अलग हो जाइये'—पहले छोटे भाईने आवेशमे कह दिया ।

'सचमुच आपके साथ हमलोगोंका निर्वाह नहीं हो सकेगा ।' दूसरे छोटे भाईने और कर्कश स्वरमें कहा ।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् य स मे प्रिय ॥

बडे भाईने गम्भीरतासे उत्तर दिया, भैया! यह श्लोक गीताका है। अर्जुनसे भगवान् कहते है कि 'जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है, न कामना करता है तथा जो शुभ और अशुभ समस्त कर्मोको त्याग चुका है, वह भक्तियुक्त पुरुष मुझे प्रिय है।' गीताभ्यासीने श्लोक सुनाया, इसी बीचमे—

'उपदेश अपने पास रखिये। आज ही आप अलग हो जाइये'—तीसरे छोटे भाईने जोरसे कहा।

तुमलोग मुझे अलग करते हो, इससे न तो मुझे कोई हर्ष है और न कोई शोक ही है—गीताप्रेमी बडे भाईने शान्तिसे उत्तर दिया। 'न द्वेष है और न अलग होनेकी आकाङ्क्षा ही है। हर्ष, शोक, इच्छा तथा द्वेषसे रहित पुरुष ही प्रभुका प्रिय पात्र है। तुम-लोग जो उचित समझो करो।'

'बिना अलग किये इनकी अक्ल ठिकाने नहीं आयेगी। लच्छेदार उपदेश देकर आनन्दपूर्वक दिन बिताना चाहते हैं।' छोटे पहले भाईने निश्चय सुना दिया।

'हमलोगोंने बहुत दिनोंतक इनका पालन-पोषण किया। अब तग आ गये'—छोटे दूसरे भाईने भी दोनों बन्धुओंका अनुमोदन किया।

'मैं सम्मिलित रहती तो तीनोका भोजन बनाना पडता'—भीतरसे गीताभ्यासीकी कर्कशा पत्नीने जोरसे कहा। 'तीनोंको अलग हो जाने दो, चिन्ताकी कोई बात नहीं।'

'अनुकूल परिस्थिति पाकर जिसे हर्ष नहीं होता, वही प्रभुका प्रिय है।' गीताभ्यासीने अपनी पत्नीको प्रेमसे समझाया—'तुम्हें इस तरह नहीं बोलना चाहिये। फिर यह तो अनुकूल भी नहीं है, क्योंकि भगवान्ने तुम्हें इतने प्राणियोंकी सेवाका अवसर दिया था। यह तो तुम्हारे सौभाग्यकी बात थी, तुम्हें इसके लिये प्रभुका कृतज्ञ होना चाहिये था।'

'इतने गहने, कपड़े, बर्तन और रुपये आपके रहे और छोटा घर आपके रहनेके लिये ।' तीनों भाइयोंने बडे भाईके सामने थोडी-सी चीजे रख दीं । सभी भाई जोशमे थे । भाभीकी कटु वाणीने क्रोधाग्निमे घृतका काम कर दिया था ।

'भगवान्की जैसी इच्छा !'—गीताभ्यासीने शान्तिके साथ उत्तर दिया । उसकी मुखमुद्रा पूर्वकी भाँति ही सहज प्रसन्न और शान्त थी । चिन्ताकी कोई रेखा उसकी आकृतिपर नहीं दीख रही थी ।

× × × ×

'अब भी आप चुपचाप बैठे हैं, कैसे काम चलेगा ?' गीताभ्यासीकी पत्नीने कहा । 'न काङ्क्षति' उत्तर मिला । 'मुझे कोई धनकी आकाङ्क्षा नहीं है । आकाङ्क्षारहित व्यक्ति ही प्रभुको प्रिय है ।'

'रुपये खर्च हो जानेपर कैसे काम चलेगा ?'—पुन प्रश्न हुआ ।

'न शोचति' नपा-तुला उत्तर मिला । 'शोकरहित पुरुष प्रभुका प्रिय पात्र है । अत जीविकाके लिये मुझे शोक नहीं है ।' गीताभ्यासीकी पत्नी चुप हो गयी ।

× × × ×

'अब तो मेरे पास रुपये नही रहे, क्या करूँ ?'—चिन्तित पत्नीने एक दिन पतिसे पूछा ।

'न काङ्क्षति' वही पुराना उत्तर मिला ।

'आभूषण तो तनपर एक भी नहीं रहा ।'—दुखी पत्नीने कुछ दिनो बाद फिर कहा । 'सब-के-सब पेटका गड्ढा भरनेमे समाप्त हो गये, अब तो आप कुछ करे ।'

'न शोचति' पुन वही चार अक्षरोंका उत्तर मिला । स्त्री निराश हो, मन मसोसकर रह गयी ।

× × × ×

'अब मेरे पास कुछ नहीं रह गया ।' रोती हुई गीताभ्यासीकी पत्नीने कहना शुरू किया । 'अपना मकान तो बिक ही गया । घर कियायेका है । बर्तन दूसरोंसे उधार लेकर रसोई बनायी है । पहननेके लिये दो-दो कपडोंके अतिरिक्त अब तो हमलोगोंके पास रुपये-पैसे, गहने-कपडे, बर्तन-बासन या अन्य कोई भी वस्तु नहीं रह गयी, जिससे जीवन-निर्वाह हो सके । अब तो कुछ काम कीजिये ।' पत्नीने आशान्वित होकर आग्रह किया ।

'न काङ्क्षति' वही पुराना जवाब मिला । 'मुझे कोई आकाङ्क्षा नहीं है ।'

'आखिर काम कैसे चलेगा ?'—आँसू पोंछते हुए अधीर नारीने कह दिया ।

'न शोचति'—'मैं शोच नहीं करता, ऐसा ही पुरुष प्रभुको प्रिय है' कहकर गीताभ्यासी मौन हो गया ।

'बडा विचित्र मस्तिष्क है आपका ।' पत्नीने चिढकर कहा—'मुझे तो आशा थी कि सब कुछ समाप्त हो जानेपर तो आप कुछ करेंगे ही, पर 'न काङ्क्षति', 'न शोचति' इसीसे भगवान् सतुष्ट रहते हैं'—यह सब सुनते-सुनते तो मैं हैरान हो गयी ।

'मैं सच्ची बात कहता हूँ ब्राह्मणी ।' गीताभ्यासी कहने लगा । 'आज ही प्रातःकालकी बात है । शौचसे निवृत्त होकर जब मैं नदी-तटपर गया तो देखा कि नदीका जल ऊपर सूख गया है, भीतर-ही-भीतर बह रहा है, जलके लिये मैंने घाटके किनारे ही गड्ढा खोदा तो वहाँ मणि-माणिक्य तथा स्वर्ण-मुद्राओंसे पूरित एक टोकना निकल आया । उस समय भगवान्का वाक्य मुझे तुरत स्मरण हो आया—'अनुकूलकी प्राप्तिमें जो हर्षित नहीं होता, वह मेरा प्रिय है ।' इसलिये उस रत्नराशिको देखकर भी मैं जरा भी हर्षित नहीं हुआ ।

भगवान्‌ने 'न द्वेष्टि' कहा है, इसीलिये मैंने उससे द्वेष नहीं किया, उसे निकालकर कहीं फेंका भी नहीं। उसकी मुझे 'आकाङ्क्षा' भी नहीं थी। मैं उसे ज्यों-का-त्यों ढककर वापस आ गया। उस अनन्त धन-राशिको परित्याग करनेका रञ्चमात्र भी मुझे शोक नहीं है। इस प्रकार भगवान्‌की दयासे मुझे न हर्ष हुआ, न द्वेष और न पश्चात्ताप हुआ तथा न आकाङ्क्षा ही। उसे मैं तो लाया नहीं, पर कोई लाकर मुझे दे जाय तो मैं रख लूँ—ऐसी भी मेरी भावना नहीं है। क्योंकि भगवान्‌ने कहा है—'जो शुभ-अशुभका परित्यागी होता है, वह मुझे प्रिय होता है।'

स्त्रीने खीझकर कहा—'आपको न सही, मुझको तो आकाङ्क्षा है।' पण्डितजीने कहा—'तुम्हे भी आकाङ्क्षा नहीं करनी चाहिये।'

× × × ×

'अरे! यह तो काला नाग है'—चौंकते हुए एक चोरने कहा। 'गीताभ्यासी परम धूर्त है।'—दूसरे चोरने धीरेसे जवाब दिया। 'उसने समझ लिया था कि हमलोग उसके घरमें घुस गये हैं, इसलिये ज्ञान बघारने लगा और हमें साँपसे कटवानेकी नीयतसे ही टोकनेमें हीरे-पन्ने बताकर उसने हमें धोखा दिया।'

'उसकी स्त्री भी कम चट नहीं है।' तीसरा चोर तुरंत बोल उठा। 'दोनोंने मिलकर हमलोगोंको छकाया है। सचमुच मार डालनेकी युक्ति ही उन दोनोंने सोची थी।'

'यही युक्ति उनपर लगायी जाय।' चौथेने सलाह दी। नागसमेत टोकना उनकी झोपडीमें डाल दिया जाय, बस, 'न शोचति', 'न काङ्क्षति' का पूरा अभ्यास हो जायगा।'

जिस समय रातको ब्राह्मण अपनी पत्नीसे टोकनेकी बात कह रहा था, उसी समय चोर घरमे घुसे थे और उन्होंने उनकी बातें सुनकर

धनके लोभसे नदीतटपर आकर टोकनेको निकाला था और उसका मुँह खोलते ही उन्हे भयङ्कर काला नाग फुफकार मारता दिखायी दिया, तब उनमें ऊपर लिखी बातचीत हुई ।

चौथे चोरकी बातका सबने एक स्वरसे समर्थन किया । टोकनेका मुँह बद करके चारो चोरोंने उसे कधेपर उठाया । हॉफते हुए सब-के-सब गीताभ्यासीके मकानपर आये । घरके ऊपर छप्परमे एक छिद्र बनाकर तीन तो सरक गये । चौथा टोकनेको मकानके ऊपर छिद्रके मुँहपर उलटकर भाग खड़ा हुआ ।

'अरे, यह देखिये सोनेकी अशर्फियोंका ढेर।'—गीताभ्यासी पण्डितकी पत्नी मणि-माणिक्य और अशर्फियोकी ध्वनिसे जाग पडी थी । नाग मणियोंके नीचे दबकर परलोक सिधार चुका था । ब्राह्मणी हर्षातिरेकसे उत्फुल्ल हो रही थी । उसने कहा—'भगवान्ने छप्पर फाडकर रत्न-भण्डार भेज दिया ।'

'हर्षोत्फुल्ल नहीं होना चाहिये ।' पण्डितजीने सहज भावसे तुरत कहा । 'प्रिय वस्तु पाकर जो हर्षित नहीं होता, भगवान् उसीको प्यार करते हैं ।'

× × × ×

'हमलोग क्षमा चाहते हैं ।'—तीनो भाइयोंने एक दिन आकर लज्जित स्वरमे कहा ।

'मैं किसीसे द्वेष नहीं करता, तुमलोग तो मेरे भाई हो, मुझे लज्जित न करो'—गीताभ्यासीने बडी नम्रतासे उत्तर दिया ।

'भैया।' कण्ठस्वर भर आया था तीनो बन्धुओका । उन्हे ऐसे प्रेमभरे शब्दोकी बडे भाईसे आशा नहीं थी । एकने कहा—'आपसे अलग होनेपर हमलोगोको सदा क्षति ही उठानी पडी है । लक्ष्मीदेवीने घर ही त्याग दिया । हम सब ऋणी हो गये हैं, दाने-दानेके लिये तरसकर

समाजमे अपमानित तथा लाञ्छित जीवन बिता रहे हैं ।'

'हमारी जिदगी भार हो गयी भैया ।'—दूसरे छोटे भाईने कहा ।

'लज्जासे हमलोग आपके पास नहीं आ रहे थे, पर विपत्तियोंने हमे भेजा है ।'—छोटे तीसरे भाईने कह दिया ।

'सहोदर भाई आप हैं ।'—पुन पहला छोटा बोला ।

'आप पुण्यात्मा हैं । प्रतिदिन दीनोको इतना धन खुले हाथों बॉट रहे हैं । हम तो आपके छोटे भाई हैं, हमें क्षमा करें ।'—दूसरेने गिडगिडाते हुए कहा—

'ये रत्न-अशर्फियॉ आपलोग ले जायॅ ।' गीताभ्यासी पण्डितकी पत्नी तीनो देवरोके करुणायुक्त दीन वचन सुनकर द्रवित हो गयी थीं । कुछ रत्न-अशर्फियॉ लाकर देते हुए बोलीं—'हमें तो भगवान्ने छप्पर फाडकर दिया है, और भी दे जायॅगे ।'

''भगवान् हमे फिर दे जायॅगे' ऐसी आकाङ्क्षा तुम्हें नहीं करनी चाहिये ।'—अपनी पत्नीको सम्बोधित करते हुए पण्डितजीने कहा । 'आकाङ्क्षारहित पुरुष ही भगवान्का प्रिय पात्र बनता है ।'

'अपराधके लिये क्षमा चाहती हूँ ।'—पत्नीने भूल स्वीकार की ।

'भैया आप अपनेमे हमे मिला लें ।'—एक छोटे भाईने प्रार्थना की ।

'हॉ भैया । बडी कृपा होगी आपकी ।'—दूसरे छोटे भाईने भी आग्रह किया ।

'आपके पुण्यसे हम ऋणमुक्त हो जायॅगे, हमलोगोंका सारा दु ख मिट जायगा, भैया ।'—तीसरेने भी अनुरोध किया ।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् य स मे प्रिय ॥

गीताभ्यासी पण्डितने वही प्राचीन श्लोक, जो उनका प्राण था, दुहराया । तुमलोग मुझे पुन सम्मिलित करना चाहते हो, इसमें मुझे

किसी प्रकारकी आपत्ति नहीं है और न हर्ष ही है। यदि पुन तुमलोग मुझे अलग कर दोगे, तो भी मुझे शोक नहीं होगा और न मैं तुमलोगोंसे द्वेष ही रखूँगा, क्योंकि हर्ष, द्वेष, शोक, आकाङ्क्षा तथा शुभाशुभको परित्याग करनेवाला पुरुष ही भगवान्‌का सच्चा प्रेमी समझा जाता है।

× × × ×

'आपके पदार्पण करते ही आपकी कृपासे हमारा घर और घरका तमाम सामान, जो गिरवी रखा था, छूट गया। हम ऋणमुक्त हो गये'—एक दिन चारो भाइयोंके एकत्र होनेपर सबसे छोटे भाईने कहा। 'हमारा जीवन आनन्दसे बीत रहा है।'

'लक्ष्मीदेवीकी हमपर बडी कृपा हो गयी है।' दूसरे छोटे भाईने कहा।

'यो न हृष्यति न द्वेष्टि ' श्लोक गाती हुई गीताभ्यासी पण्डितकी पत्नीने आकर कहा—'चलिये भोजन तैयार है।'

भोजन करनेके लिये उद्यत होते हुए छोटे तीसरे भाईने कहा—'अब तो भैया और भाभीकी तरह हमलोग भी प्रतिदिन नियमपूर्वक गीतापाठ किया करेंगे।'

'गीताके अनुसार जीवन बनानेका पूर्ण प्रयत्न करेंगे'—सबसे छोटे भाईने कह दिया।

'फिर तो हमारा घर भगवान्‌का मन्दिर बन जायगा'—दूसरे छोटे भाईने कहा।

'प्रभु करें ऐसा ही हो'—मुसकराते हुए गीताभ्यासी सबसे बडे भाई बोल गये।

(निवृत्तिपरक स्वभावका अनुसरण करके यह गाथा लिखी गयी है। इस श्लोकका अर्थ प्रवृत्तिपरक भी होता है और इस तरह प्रत्येक कर्मशील भक्तके लिये भी यह श्लोक आदर्श है।)

—०—

परमानन्दकी खेती

'भैया! इतनी दूर कैसे आये?'—स्वागत करनेके बाद पजाब रहनेवाले मित्रने पूछा। राजपूतानेसे पजाब आनेका कोई कारण-विशेष अवश्य होगा, उसने समझ लिया था।

'मेरे यहाँ अकाल पडा हुआ है। लोग दाने-दानेके लिये तरस रहे हैं और कितने ही क्षुधासे तडप-तडपकर प्राण छोड रहे हैं। व्याकुल होकर मैं परिवारसहित आपके पास आ गया।'—राजपूतानेके वैश्यने अपने मित्रसे सच्ची बात बता दी। अपने मित्रके पास अन्नका ढेर देखकर वह मन-ही-मन प्रसन्न भी हो रहा था।

'आप यहाँ आ गये, बड़ा अच्छा किया। आपका ही घर है, आनन्दपूर्वक रहिये'—वैश्यके मित्रने बडे प्रेमसे उत्तरमें कहा।

'आपके यहाँ तो अन्नके ढेर लगे हैं, हमारे देशमें तो अन्न आजकल किसी भाग्यशालीको ही मिलता है, वहाँ तो एक-एक दानेके लिये चील्ह-कौओंकी तरह छीना-झपटी हो रही है। आपके यहाँ सहस्रो मन गल्ला एकत्र देखकर मेरे जीमें जी आ गया।'—वैश्यने स्थिति स्पष्ट की।

'यहाँ तो भगवत्कृपासे अन्नका अभाव नहीं है। इसमे आश्चर्यकी कोई बात भी नहीं है, यहाँ तो कोई भी आये, उसके लिये अन्नकी कमी नहीं है। आप तो हमारे मित्र हैं, यहाँ तो सब कुछ आपका ही है। यहाँ आकर आपने बडा अच्छा किया।'—मित्र बोला। वह चतुर और अनुभवी किसान था।

'आपकी सभी वस्तुऍं हमारी हैं, इसमे तो सदेह नहीं है, पर मैं जानना चाहता हूँ कि इतनी अन्नराशि आपके पास आयी कहॉसे ?'— वैश्यने चकित होकर पूछा ।

'हमारे यहॉ बराबर खेती होती है । उसीका यह प्रताप है ।' किसान मित्रने वैश्य बन्धुका समाधान करना चाहा । 'आप भी खेती करने लगे तो आपके पास भी अन्नके ढेर लग जायँगे ।'

'बडी सुन्दर बात है, कृषिके कार्यमें मैं भी जुट जाऊँगा । पर इसका अनुभव मुझे नहीं है । मेरे पास एक सहस्त्र रुपये हैं । इतनेसे खेती आरम्भ हो सकती है क्या ?'—वैश्यने पूछा ।

'एक हजारकी पूँजी कम नही है । इतने रुपयेसे खेतीका काम आप बडी सुन्दरतासे आरम्भ कर सकते हैं । मेरा पूरा सहयोग रहेगा ही ।'—किसानने सहानुभूतिपूर्ण शब्दोमे अपने वैश्य मित्रसे कहा ।

'मुझे तो इसका कोई ज्ञान नहीं है । आप जैसा उचित समझे करें ।'—अपनी समस्त पूँजी किसानके हाथमे समर्पित करते हुए वैश्यने जवाब दिया ।

× × × ×

'देखिये, ये सब गेहूँ तो मिट्टीमें मिल गये । गेहूँका एक-एक दाना फूटकर नष्ट हो गया'—अत्यन्त निराश होकर वैश्यने कहा । उसने अपने पंजाबी किसान मित्रके किसी काममे बाधा नहीं दी थी । किसानने मित्रकी पूँजीसे बीजादिका प्रबन्ध करवाकर हल चलवा दिया था । बीज बो दिये थे । पर अनुभवहीन वैश्य यह सब देखकर चिन्तित हो रहा था । दो-तीन दिन भी नहीं बीतने पाये कि वह खेतमे जाकर खोदकर गेहूँके दाने देखने लगा । उसे बहुतसे बीज अङ्कुरित दीखे, इसपर उसने समझा कि मेरे सारे रुपये मिट्टीमें मिल गये । अत्यन्त दुखी होकर उसने अपने मित्रसे उपर्युक्त बात कही ।

'आपके खेतमे अङ्कुर निकलने शुरू हो गये है। आप कोई चिन्ता न करे। बीजके लक्षण अच्छे हैं। आपको पता नहीं है।'—किसान मित्रने वैश्यको आश्वासन दिया।

'मुझे तो धन और श्रमका व्यय करनेपर भी कोई लाभ होता नहीं दीखता। मैं तो बहुत चिन्तित हो गया हूँ।'—वैश्यने मनकी व्यथा स्पष्टत कह दी।

'प्रारम्भमे ऐसा ही होता है। आप निश्चिन्त रहे। आपकी खेती बड़ी सुन्दर हो रही है।' किसान मित्रने बडे प्रेमसे उत्तर दिया।

वैश्य चुप था। इसके अतिरिक्त उसका वश ही क्या था।

× × × ×

'मेरे खेतमे तो सर्वत्र घास-ही-घास दीख रही है। मुझे तो बडी हानि हुई। मेरा सारा रुपया व्यर्थ गया।'—वैश्यने थोड़े ही दिनोंमें फिर किसानसे कहा। बित्ते बराबर गेहूँके पौधोंको उसने घास समझ लिया था।

घबराया हुआ किसान स्वय खेतपर गया, पर वहॉ खेती देखकर वह बडा प्रसन्न हुआ।

'अरे! आपका खेत तो आस-पासके सभी खेतोंसे बढकर है।' किसानने हतोत्साह मित्रका भ्रम निवारण किया।'आप समझ लें कि अब गेहूँका विशाल ढेर आपके पास एकत्र होनेवाला ही है। पर इस बातका ध्यान अवश्य रखे कि पौधे सूखने न पायें। इन सुकुमार पौधोंका जीवन पानी है। इसकी व्यवस्था आप शीघ्र कर लें। इनकी सिचाईके लिये आप शीघ्र ही एक कुऑ खुदवा लें। साथ ही खेतको चारों ओर कॉटोकी बाड लगाकर रूँध दें, नहीं तो पशु आकर इसे चर जायँगे। खेतकी रखवाली आपको सावधानीसे करनी होगी।'

'आपकी प्रत्येक आज्ञाका मैं शब्दश पालन करूँगा।' वैश्यने कहा

और वैसा ही किया । कुआँ खुदवाकर खूब सिचाई की । भगवत्कृपासे बीच-बीचमे बादल-दलने भी जल-वर्षण किया । पौधे बढने लगे ।

× × × ×

'पौधोके बीच-बीचमे जो घासे उग आयी हैं, उन एक-एक घासोका निरान कर डालिये । वे गेहूँकी वृद्धिके बाधक हैं'—एक दिन खेतपर आकर किसानने वैश्यको प्रेमभरे शब्दोंमे आदेश दिया ।

'एक घास भी खेतमे नहीं रहने पायेगी ।'—वैश्यने तुरत उत्साहपूर्ण शब्दोमे उत्तर दिया ।

× × × ×

'गेहूँके दाने तो हो गये, पर ये तो सब-के-सब कच्चे ही हुए हैं ।'—माथेका पसीना पोंछते हुए वैश्यने किसान बन्धुसे कहा । वह खेतसे दौडता आया था और जोरोसे हाँफ रहा था । उसने अपने किसान मित्रके आदेशानुसार अपने खेतमे घासका कोई चिह्न भी अवशिष्ट नहीं रहने दिया था । उसका परिश्रम अतुलनीय था । गेहूँमे फल भी लगे थे, पर इतने दिनोंके बाद उसने देखा तो सब-के-सब फल कच्चे ही थे । खेतीके ज्ञानसे शून्य होनेके कारण वह गरीब घबरा गया था । उसने समझा रुपयेके साथ-साथ मेरी ऍडी-चोटीका पसीना भी व्यर्थ सिद्ध हो रहा है । उसने दो-तीन फलियाँ भी किसानके सामने रख दीं, जिन्हे वह साथ ही लेता आया था ।

'आपके गेहूँके दाने तो बडे पुष्ट हैं । ये अब जल्दी ही पक जायँगे । अब इसमें विलम्ब नहीं होगा । आप घबरायें नहीं । किसी प्रकारका विचार भी न करे । आपके घरमे गेहूँ और भूसेके पहाड लग जायँगे ।' प्रसन्नताभरे शब्दोमे किसानने वैश्यसे कहा । पर ऐसे समय पक्षी आ-आकर काकली—मीठी-मीठी बोली सुनाते हैं और सब दाने खा जाया करते हैं, अत खेतीकी खूब रक्षा करनी होगी ।

पक्षियोसे रक्षा किये बिना, पक्षी सारे खेतका नाश कर डालेंगे।'

'मैं आपका कृतज्ञ हूँ। मेरे आनन्दकी सीमा नहीं है। मेरे पास गेहूँका विशाल ढेर लग गया है'—वैश्यने आनन्दभरे शब्दोंमें किसान मित्रके प्रति आभार प्रदर्शित किया।

'यह सब भगवान्‌की कृपा और आपके श्रमका फल है। आप पक्षियोके कलरवपर ध्यान न देकर उन्हें उडानेमें ही लगे रहते थे। आपने बडी तत्परतासे कृषि की थी।'—किसानने वैश्यबन्धुको ही यश दिया।

वैश्य नतमस्तक हो गया। उसकी आकृतिपर आनन्द हँस रहा था।

× × × ×

यह कहानी एक दृष्टान्तरूपसे कही गयी है। इसे परमार्थ-विषयमें इस प्रकार घटाना चाहिये। सच्चे सुखकी प्राप्तिके लिये साधन करनेवाले जिज्ञासुको यहाँ अकालपीडित वैश्य समझना चाहिये। साधककी सासारिक कष्टोकी ज्वालासे उत्पन्न सच्चे सुखकी अभिलाषाको अकालपीडित वैश्यकी भूखकी ज्वालाके कारण अन्नकी आवश्यकता समझनी चाहिये। महात्माको पजाबमें रहनेवाला वैश्यका किसान मित्र समझना चाहिये। वैश्यका जो राजपूतानासे अपने मित्रके पास पजाब जाना है, यही साधकका अपने घरसे महात्माके आश्रममे महात्माके पास जाना है। मित्रके पास जाकर वैश्यका जो अपने कष्टकी बात कहना है, वही जिज्ञासु साधकका महात्माको अपना दु ख निवेदन करना है। वैश्य भाईका जो अपनी सम्पूर्ण पूँजी मित्रको सौंप देना है, यही साधकका अपने मानव-जीवनका अवशेष समय महात्माके चरणोमें समर्पित करना है। मित्रके कहे अनुसार जो धनका खर्च करना है, यही महात्माके आज्ञानुसार समयका सदुपयोग करना है। किसान मित्रका जो जमीन और बीजका प्रबन्ध करवा देना है, इसे महात्माका

समयको सदुपयोगमें लानेकी शिक्षा देना समझना चाहिये । खेतीके लिये जो अपने सुखका त्याग करना है, इसको परम आनन्दकी प्राप्तिके लिये वर्तमान सासारिक सुखका त्याग करना समझना चाहिये । बीजका जो खेतमें बो देना है, इसको महात्माके द्वारा साधनके बीज-मन्त्रका हृदय में धारण करना समझना चाहिये । खेती करनेसे खेतमें बीजोका अङ्कुर फूटनेपर बेसमझीके कारण दु ख और निराशाका अनुभव होनेको साधन-कालमें होनेवाली निराशा और तज्जनित क्लेश समझना चाहिये । वैश्यका भ्रमसे गेहूँके छोटे पौधोंको जो घास समझना है, यही साधनकालमें साधनकी उन्नति होनेपर भी साधनमे परिश्रम अधिक होनेके कारण उसे भ्रमसे साधन न समझकर व्यर्थ समझना है । मन और इन्द्रियोंके सयमको बाड समझना चाहिये । अध्यात्म-विषयको सासारिक स्वार्थी मनुष्योके सम्पर्कमे खर्च न करना ही पशुओंसे खेतको बचाना है । भगवान्के गुण-प्रभावसहित रूपकी स्मृति और सत्सङ्ग-स्वाध्यायको, कुआँ खोदकर खेतको सींचते रहना समझना चाहिये । अपने-आप सत्सङ्ग प्राप्त होने और ध्यानका अभ्यास चलनेको ईश्वर-कृपासे समयपर स्वत वर्षा हो जाना समझना चाहिये । दुर्गुणों और दुराचारोको अपने हृदय से हटाते रहना यहाँ गेहूँके अतिरिक्त अन्य घास-फूँस का निरान करना है । परमात्माके ध्यानकी स्थिरताको यहाँ गेहूँका फलना तथा स्वार्थी मनुष्योंके द्वारा की जानेवाली साधककी स्तुति-कीर्तिको यहाँ गेहूँको खानेके लिये आनेवाले पक्षियोंकी काकली समझना चाहिये । साधन परिपक्व होनेके लिये स्तुति-कीर्तिकी तथा स्तुति-कीर्ति करनेवालोंकी अवहेलना करनेको यहाँ खेतीकी रक्षाके लिये पक्षियोको हटा देना समझना चाहिये एव सम्पूर्ण दु खोंका अभाव होकर परमानन्दस्वरूप परमात्माकी प्राप्ति हो जानेको गेहूँके पक जानेपर उसका ढेर लग जाना समझना चाहिये ।

—०—

समता अमृत और विषमता विष है

राजपूतानेके किसी गॉवमें एक अत्यन्त गरीब वैश्य रहता था। दैवयोगसे वहॉ एक बार भयानक अकाल पड़ा। अन्नके अभावमें लोग तडप-तडपकर मरने लगे। गरीब वैश्यपर भी विपत्ति टूट पडी। कुछ दिन तो उसने जैसे-तैसे काम चलाया। आखिर परिवारके भरण-पोषणका कोई उपाय न देख, घरवालोंकी कुछ दिनोंके लिये किसी तरह व्यवस्था करके वह निकल पडा। उसका एक बचपनका धर्म-भाई था। वह आसाममें व्यापार करता था। खूब सम्पन्न था। उसका बडा व्यापार चलता था। गरीब वैश्यको उसकी याद आ गयी और 'बिपति काल कर सतगुन नेहा'—मित्रका यह लक्षण सोचकर वह किसी तरह आसाम पहुँचा। जिस स्थानमें मित्रका कारबार था, वहॉ जाकर उसने मित्रसे भेंट की। उसे पूरा भरोसा था कि मित्रके यहॉ सहज ही आदर होगा और दु:खके दिन अच्छी तरह कट जायँगे। मित्रने उसका स्वागत किया, पर उसके चेहरेपर प्रफुल्लताकी जगह कुछ झुँझलाहटकी-सी, कुछ बोझकी-सी रेखाएँ पड रही थीं। गरीब वैश्य तो दु खी था। उसने संक्षेपमें बड़े ही करुण शब्दोंमें अपना सारा किस्सा सुनाकर आश्रयकी भीख मॉगी। कहा—'भाई साहेब! घरमे आपकी भाभी और बच्चे भूखों मर रहे होंगे, उनके लिये आज ही कुछ खर्च भेजना आवश्यक है। साथ ही मेरे लिये भी ऐसे कामका प्रबन्ध होना चाहिये जिससे मेरे ये दु खके दिन निकल जायँ और बच्चोको प्रतिमास कुछ भेजा जा सके।'

धनी मित्रने लम्बी सॉस खींचकर कहा—'भाई साहेब! बात तो

ठीक है । मुझे इस समय आपकी कुछ सेवा करनी भी चाहिये, परतु मेरे यहाँ न तो इतनी आमदनी है कि मैं आपकी कुछ सहायता कर सकूँ और न आजकल कोई काम ही है, जो आपको दे सकूँ । मूल पूँजीके ब्याजसे, मकानोके किरायेसे और व्यापारकी आमदनीसे कुल मिलाकर चालीस-पचास हजार रुपये आते होगे । आप जानते हैं, आजकल महँगी है, फिर अपनी इज्जतके अनुसार खर्च भी करना ही पडता है । परिवार है, मुनीम-गुमास्ते हैं । मुश्किलसे काम चलता है । फिर बताइये, आपका और आपके परिवारका भरण-पोषण करनेकी मुझमें कहाँ शक्ति है ? मुझे खेद है, पर बाध्य होकर कहना ही पडता है कि मुझसे इस समय कुछ भी नहीं बन पडेगा । आप कोई दूसरा रास्ता सोचे ।'

गरीब वैश्यने उदास होकर कहा—'भाई साहेब ! मैं तो यहाँ किसीको जानता भी नहीं, केवल आपके ही भरोसे आया हूँ । फिर मेरा खर्च ही कौन-सा भारी है । पचास रुपये इस समय राजपूताने भेज दिये जायँ और फिर पचास-साठ रुपये मासिककी मजदूरीका काम मुझे मिल जाय तो काम चल जायगा । कुछ मेरे खर्चमें लग जायगा, बचेगा सो बाल-बच्चोके लिये भेज दूँगा । जहाँ पचासों हजारकी आमदनी है, वहाँ इतना-सा खर्च आपको भारी नही मालूम होना चाहिये । फिर मैं तो काम करके मजदूरीके पैसे लेना चाहता हूँ ।' यो कहते-कहते उसकी आँखोंमें आँसू छलक आये । मित्रके निराशाजनक वचनोंसे उसे बडा सताप हो रहा था । धनी मित्रने उसके चेहरेकी ओर देखा, पर उसका हृदय नही पसीजा । उसने फिर कपट-विनयके साथ वही कहा—'भाई साहेब ! आपका कहना तो यथार्थ है, पर मैं लाचार हूँ । आपको कोई दूसरा उपाय ही सोचना पड़ेगा । हाँ, दो-चार दिन जबतक आपके कामकी कोई

व्यवस्था न हो, आप यहाँ ठहर जायँ । घरमे ही खायें-पियें । अभी शौच-स्नान करें । भोजन तैयार हो गया होगा ।' इतना कहकर धनी मित्र अपने काममें लग गया । गरीब वैश्य बेचारा मन-ही-मन जानें क्या-क्या विचार करता हुआ शौच-स्नानमें लगा ।

धनी मित्रका तो रूखा और कजूस स्वभाव था ही, उसकी पत्नी उससे भी बढकर थी । उसे कोई दूसरा सुहाता ही नहीं था । पति तो सभ्यतावश कहीं-कही कुछ सह भी लेता था,परंतु पत्नी तो पतिको भी फटकार देती थी । घरपर आये हुए बचपनके परिचित मित्रको सभ्यतावश भोजन कराना ही होगा । उसने अंदर जाकर पत्नीसे कहा—'राजपूतानेसे मेरे एक पुराने धर्म-भाई आये हैं । उन्हे भोजन कराना है । जहाँतक हो सके, उनके लिये अच्छी चीजे बनाकर आदरपूर्वक खिलाना चाहिये । मित्र हैं । फिर अतिथि हैं ।' परम्परासे अतिथिसत्कारकी बात सुनी हुई थी, पत्नी झुँझला न उठे, इसलिये उसने यह दलील भी सामने रख दी, किंतु उसपर इसका क्या प्रभाव पडता । उसने तडककर कहा—'भाडमें जायँ आपके ये मित्र और अतिथि, चूल्हा फूँकते-फूँकते मेरी तो आँखें फूटने लगीं । आज मित्र, कल अतिथि, परसों व्यापारी—रोज एक-न-एक आफत लगी ही रहती है । मैं तो तग आ गयी इस गृहस्थीसे । मुझसे यह सब नहीं होगा, अपना दूसरा प्रबन्ध कीजिये ।' पतिने सकुचाकर चुपकेसे कहा—'अरी । जरा धीरे तो बोलो, वे बाहर ही खडे हैं, सुन लेंगे तो उन्हें बडा दु ख होगा ।'—उसने झल्लाकर कहा—'तो और भी अच्छा होगा, जल्दी बला टलेगी ।' पतिने उसकी कुछ बडाई करके किसी तरह मनाकर कहा—'देखो ! मैंने पहले ही उनसे कह दिया है कि मेरे पास काम नहीं है, आप दूसरा उपाय सोचिये, दो-चार दिनोंमें वे चले जायँगे । इतने दिन किसी तरह अपनी इज्जतके

अनुसार उनको भोजन तो कराना ही चाहिये ।' पत्नीने बात मान ली और भोजन बनाया, परतु मनमे कष्ट तो बना ही रहा । अस्तु ।

भोजन तैयार होनेपर गरीब अतिथिको साथ लेकर धनी मित्र अदर आया तो पत्नीने कहा—'पहले अपने मित्रको भोजन करा दीजिये, क्योंकि अतिथिको पहले भोजन कराना धर्म है, पीछे आप कर लीजिये ।' पतिने यह बात मान ली और अतिथिको अच्छी तरह भोजन कराया । भोजनमें चीनीमें डाली हुई बढिया खीर, पूरी, दही और कई तरहकी तरकारियॉ थीं, परतु भोजन करानेवालोके चेहरेपर कोई उल्लास या मिठास नहीं था । वहॉ प्रत्यक्ष रूखापन तथा विषाद था । मालूम होता था, वे किसी आफतमे आ पडे हैं और उन्हें बिना मन यह सब करना पड़ रहा है । गरीब अतिथिने चुपचाप भोजन तो कर लिया; परतु उनकी मुखमुद्रा देखकर उसे सुख नहीं मिला । सुख तो प्रेममें ही समाया होता है । भोजन करनेके बाद लघुशङ्काके लिये बाहर गया, इधर घरकी मालकिनने अपने पतिके लिये भोजन परोसा । इसमें बहुत-सी ऐसी चीजे थीं जो अतिथिसे छिपाकर रखी गयी थीं । वह बेचारा लघुशङ्का करके अदर हाथ धोने आया और इच्छा न रहनेपर भी सहज ही धनी मित्रकी भोजनकी थालीकी ओर उसकी दृष्टि चली गयी । उसने देखा, बादामका हलुआ है । एक कटोरेमें खीरकी मलाई और दूसरेमे दहीकी मलाई है । बहुत बढिया खूब फूले हुए पतले-पतले फुलके है, जिनपर ताजा मक्खन लगाया गया है । गोभी-परवलकी एव कई और तरकारियॉ तथा कई तरहके अचार रखे है । यह सब देखकर उसकी समझमें स्पष्ट यह बात आ गयी कि इसी विषमताके कारण मुझे इसके साथ भोजन नही कराया गया था । वैषम्यजनित सताप और भी बढ गया और वह चुपचाप हाथ धोकर बाहर चला गया ।

रात्रिका समय हुआ तो धनी मित्रने पत्नीसे पूछा—'अतिथिके सोनेका प्रबन्ध कहाँ करना चाहिये?' स्त्रीने झुँझलाकर कहा—'मेरे सिरपर! भला यह भी कोई पूछनेकी बात है? जहाँ सुविधा हो, वही कर दिया जाय। घरमे आकर तो वह सोनेसे रहा।' पतिने कहा—'अच्छी बात है। बाहर गद्दीमें वे सो जायँगे, पर वहाँ मच्छर बहुत ज्यादा हैं, बेचारको नीद नही आयेगी। दो दिनके लिये मछहरी दे दो तो अच्छा हो। उसने तडककर कहा—'मेरे पास तो एक मछहरी है, आप लगा लें या उसके मूड मार दें।' पत्नीके स्वभावको वह जानता था। अधिक बात बढाना हितकर न समझकर चुपचाप बाहर चला आया और अतिथि मित्रसे कहने लगा—'भाई साहेब! गद्दी-तकिये लगे ही हैं, आप यही सो जाइये। यहाँ सुविधा रहेगी।' उस बेचारेने विनय-विनम्र शब्दोमे स्वीकार किया। सेठ अदर चले गये और वह वहीं सो गया। गरमीका मौसम था, मच्छर तो थे ही, गद्दी-तकियोमे खटमलोकी भी कमी नहीं थी। लेटते ही कतार-की-कतार निकलकर उन्होने उसपर आक्रमण आरम्भ किया। खटमलोको चुन-चुनकर फेकने और मच्छरोंके उडानेमे ही रात बीत गयी। बेचारा घडीभर भी सुखकी नींद नही सो सका।

दूसरे दिन सबेरे वह घरसे निकलकर बाजारकी ओर गया। चौराहेपर पहुँचते ही उसे अपने गाँवका एक परिचित मनुष्य दिखायी दिया। उसने भी इनको देख लिया। वह बहुत गरीब था, पर था बड़ा सहृदय। देखते ही दौडकर पास आया और बडे प्रेम तथा उल्लाससे पूछने लगा—'भाई साहेब! आप यहाँ कब आ गये? मुझे कोई खबर ही नहीं दी। आपको बडा कष्ट हुआ होगा। खबर होती तो स्टेशन चला आता। यहाँ पहुँचकर भी आपने कोई सदेश नहीं भेजा। बताइये, आप ठहरे कहाँ हैं? चलिये घरपर। मैं सामान लेता आऊँगा। मेरा बडा भाग्य है, जो आपसे मिलना हो गया।

विदेशोमें भला घरके प्रेमी पुरुष कहाँ मिलते हैं।'

उसकी सच्चे प्रेमसे सनी हुई वाणी सुनकर गरीब बेचारेका हृदय द्रवित हो गया। उसे बड़ा आश्वासन मिला, मानो डूबतेको सहारा मिल गया। उसने अपने आनेका सारा कारण कह सुनाया और कहा कि सामानमें तो मेरे पास एक धोती-गमछा, एक शतरञ्जी और लोटामात्र है। वह उन सेठजीके यहाँ रखा है। उस गरीब भाईने कहा—'वे तो बहुत बड़े आदमी हैं। यदि आप मुझे अपना मानते हों तो आपको अपने घरपर आ जाना चाहिये। घरमें आरामसे रहिये, जो कुछ रूखा-सूखा घरमें बनता है, आनन्दसे खाइये। मैं फुटकर चीजोंकी खरीद-बिक्रीका काम करता हूँ। दो रुपये रोज कमा लेता हूँ। अकेला हूँ। आप रहेंगे तो हमलोग दो हो जायँगे। दुगुना काम होगा तो आमदनी भी दो-ढाई गुनी होने लगेगी। मेहनत और सच्चाईका काम है। जितनी मेहनत, उतनी बरकत। पचास रुपये मासिक तो आप घर भेज ही देंगे। अधिकके लिये भी कोशिश की जायगी। आप घबरायें नहीं। भगवान् गरीबोंकी सुनेगा ही। पचास रुपये तो मेरे पास पहलेके रखे हैं, इन्हें तो आज ही घर भेज दें।'—यों कहकर वह उसे अपने घर ले गया। छोटा-सा टीनसे छाया मिट्टीका घर था साफ-सुथरा। उसमें बाहर छोटी-सी दूकान थी। जाते ही उसने पचास रुपये निकाले और उनका तुरत मनीआर्डर कर दिया। उस समय बेचारे अकाल-पीडितको कितना सुख और आश्वासन मिला, यह कहा नहीं जा सकता। फिर वह गरीब दूकानदार सेठके यहाँ जाकर उसका सामान ले आया।

घर लौटनेपर उसने अपनी पत्नीसे कहा—'अपने देशके एक सज्जन आये हैं। अपने परिचित भी हैं। उनके लिये भोजन बनाओ।' साध्वी पत्नीने प्रसन्न होकर कहा—'बडे भाग्य हैं हमारे, जो आज अपने

देशके सज्जन आये हैं। हमलोग भी धन्य हैं, जो भगवान्‌ने हमें ऐसा सुअवसर दिया।' उसने बडे प्रेमसे रसोई तैयार की। उस समय चावल सस्ते थे। मोटे चावल बने, मामूली पत्तियों की तरकारी, रूखी जौ-चनेकी रोटियाँ और मट्ठा। घरवालीने दोनोंको बडे आदरके साथ बिना किसी भेदके समान-भावसे भोजन कराया; बल्कि अतिथिको बार-बार बड़े प्रेमसे आग्रह करके वह परस रही थी। आज उसे भोजन करनेमे बडी तृप्ति मिली। बडा सुख मिला। प्रेमकी सूखी रोटीमें जो आनन्द है, प्रेमरहित मेवा-मिष्टान्नमें वह कदापि नहीं है। खा-पीकर दोनों दूकानका काम देखने लगे।

रातको अपने सम्मान्य अतिथिके सोनेके लिये उस गरीब दूकानदारने एक मूँजकी बुनी पुरानी चारपाई, जो उसने तीन रुपयेमें खरीदी थी, डाल दी। उसपर टाटके बोरे बिछा दिये। मच्छरोसे बचनेके लिये उसकी स्त्रीने अपनी महीन मलमलकी पुरानी ओढनी चार बाँसकी पट्टियाँ खडी करके उनपर तान दी। अकालपीडित भाईकी पहली रातकी नींद थी ही। चारपाईपर लेटते ही उसे गाढी नींद आ गयी। रातभर वह बड़े सुखसे सोया। सारी थकावट दूर हो गयी।

तीन-चार दिनोंके बाद एक दिन रास्तेमें धनी मित्रके साथ अकालपीडित भाईकी भेंट हो गयी। धनी मित्रने सभ्यतासे पूछा—'क्यों, कहीं कामकी व्यवस्था हुई? कहाँ रहते हैं, खाने-पीनेको मिल रहा है न?' उसने कहा—'बहुत अच्छी व्यवस्था हो गयी है। मैं अपने देशके अमुक दूकानदार भाईके घरमे रहता हूँ, पति-पत्नी दोनो बडे ही सज्जन हैं। दूकानमे मेरा आधा हिस्सा कर दिया है। पचास रुपये तो उसी दिन घर भिजवा दिये और भविष्यके लिये यह आश्वासन दिया है कि भोजनकी तो कोई बात ही नहीं, घरमे एक साथ करेंगे ही। कम-से-कम पचास रुपये प्रतिमास बाल-बच्चोके लिये घर

भेज दिये जायँगे । खाने-पीनेकी भी बड़ी अच्छी व्यवस्था है । उनके यहाँ अमृततुल्य भोजन करके मुझे बडी ही तृप्ति मिलती है । उनका इतना ऊँचा प्रेमभरा समताका व्यवहार है कि मैं तो उसे जीवनभर नहीं भूल सकता ।' उसकी इन बातोको सुनकर मानो सेठके गर्वपर कुछ ठेस-सी लगी, पर सच्ची बात थी । उसे अपने बर्तावका पूरा पता था । बोलता भी क्या । एक बात सूझी, उसे बड़ा गर्व था कि हमारे घर बडा बढिया भोजन बनता है । बढिया सजा-सजाया मकान है, गद्दी-तकिये, झाड-फानूस लगे हैं । उस गरीबके यहाँ ऐसी चीजें कहाँसे होंगी । अतएव उसने अपनी बात ऊँची रखने तथा उस गरीब दूकानदारकी निन्दा करनेकी इच्छासे कहा—'वहाँ आपको भोजन क्या मिला होगा । वही मोटे चावल, रूखी-सूखी रोटी, घास-पातकी तरकारी और सोनेको खाली जमीन या बहुत हुआ तो कोई पुरानी चारपाई मिली होगी । उस कँगलेके यहाँ और रखा ही क्या है । यहाँके बढिया भोजन और सजे-सजाये हुए घरको छोडकर आप वहाँ गये, अब तो मनमे पछताते होगे ।' उसने हँसकर कहा—'भाई साहेब ! आप अपने घरमें बडे धनी हैं । आपके यहाँ गद्दी-तकिये हैं, झाड-फानूस लगे हैं । सजा-सजाया मकान है । मेरे लिये तो ये सब विषके समान हुए । बढिया भोजन भी बनता है, परतु मुझे इससे क्या । आपके यहाँ मुझे न तो खानेका सुख मिला और न सोनेका ही ! मैं तो खटमल-मच्छरोंसे तग आ गया । रातभर नींद नहीं आयी । मेरे लिये तो वह मूँजकी चारपाई, टाटका बिछौना और पुरानी ओढ़नीकी मछहरी ही परम सुखप्रद है, जिनसे मैं रातको बडे सुखसे सोता हूँ । भोजनकी तो मैं क्या कहूँ । वहाँ मुझे उन मोटे चावलों, रूखी रोटियों और पत्तीकी तरकारीमे जैसा सुख मिलता है, वैसा कहीं नहीं मिला । आपका भोजन तो विषवत् था और

उसका साक्षात् अमृतके सदृश है। आपलोगोंके मनमें मैं बोझ-सा था। आप मेरे आनेको आफत मानते थे और मनमें विषमता भरी थी। महात्मा लोग कहा करते हैं कि 'विषमता ही विष है और समता ही अमृत है।' अत. आपके मेवा-मिष्टान्न भी विषमताके कारण विषतुल्य थे और उसके रूखे-सूखे भोजनमें समता होनेसे वह अमृतके तुल्य है। इतना ही नहीं, उसका बर्ताव अमृतके समान है। आपके पास लाखों रुपये हैं और लाखोंकी ही आमदनी है तथा आप मेरे बचपनके धर्मभाई भी हैं; पर आपने मेरे भूखसे बिलबिलाते बच्चोंके लिये न तो कुछ भेजना स्वीकार किया और न मेरे लिये पचास-साठ रुपये वेतनकी नौकरी ही दी। उस बेचारे गरीब दूकानदारने, जिससे मेरा केवल एक गाँवके होनेके नाते साधारण परिचयमात्र था, गरीब निर्धन होते हुए भी मुझे आश्रय दिया, मेरी सहायता की, पचास रुपये तुरत घर भिजवा दिये, मुझे अपने काममें बराबरका हिस्सेदार बना दिया। बतलाइये, मैं उसके उपकारको कैसे भूल सकता हूँ। उसने यह जो किया, सो भी उपकारकी भावनासे नहीं—विशुद्ध प्रेमसे और कर्तव्यकी भावनासे। वह मेरे ऊपर अहसान नहीं करता, बल्कि मुझे सुख पहुँचाकर वह उलटे मेरा कृतज्ञ होता है और इसमें अपनेको धन्य मानकर सुखी होता है। उसकी धर्म-पत्नीका भी ऐसा ही ऊँचा भाव है। उन दोनोंके चेहरे इसलिये प्रफुल्लता और उल्लाससे चमकते-दमकते रहते हैं।'

धनी मित्रने पूछा—'मेरे यहाँ आपको किस बातमें विषमता दिखलायी दी और उसके यहाँ समता कैसे थी?' इसपर उसने कहा—'आपके यहाँ मुझे बहुत बढिया भोजन-पदार्थ मिले, इसमे कोई सदेह नहीं। परतु मेरे लिये वे विषके तुल्य हो गये। आपको स्मरण होगा, मुझे अतिथि बतलाकर पहले अकेले भोजन कराया गया।

भोजन करनेपर मै लघुशङ्काके लिये बाहर गया । मैं हाथ धोनेके लिये लौटा तो मेरी दृष्टि आपके भोजन-पदार्थोंकी ओर चली गयी । मैंने देखा, आपके लिये बादामका हलुआ, मक्खन, पतले-पतले फुल्के, खीर, दहीकी मलाइयाँ, गोभी-परवल आदिकी तरकारियाँ और अचार आदि रखे हैं । ये सब चीजे मुझे नही परोसी गयी थीं । मुझे इनके खानेका शौक नहीं है, परतु इस विषमताको देखकर मुझे दु ख हुआ । मैं समझता हूँ, आपको ये चीजें विशेषरूपसे खिलानी थीं, इसीलिये आपकी धर्मपत्नीने 'अतिथिको पहले भोजन करानेका' बहाना करके आपको पीछे अलग जिमाना चाहा था । ऐसा भेद न करके मुझे भी आपके साथ ही भोजन कराया जाता तो क्या होता ? कुछ पैसे ही तो अधिक खर्च होते । आपने भी इस बातपर कुछ भी विचार नहीं किया और पत्नीका प्रस्ताव मान लिया । धर्मभाईके साथ ऐसा बर्ताव क्या कलङ्क नहीं है ? इसी विषमताके कारण आपका भोजन विषवत् था ।'

'उधर उसका व्यवहार देखिये । वह बेचारा बडा गरीब है, पर उसकी पत्नीने मोटे चावल, रूखी-सूखी रोटियाँ, पत्तियोकी तरकारी और छाछ—जो कुछ घरमे था, हम दोनोंको एक साथ बैठाकर समान भावसे बडे आदर-प्रेम तथा उल्लासके साथ भोजन कराया । रातको सोनेके लिये अपने सोनेकी एकमात्र चारपाई डाल दी । बिछानेके लिये टाट दे दी और मच्छरोके उपद्रवसे बचनेके लिये अपनी ओढनीकी मछहरी तान दी । उसके ऐसे निष्काम प्रेम और समताके व्यवहारने मुझपर जो प्रभाव डाला, उसे मैं ही जानता हूँ । मे तो वहाँ इसीलिये अमृत-ही-अमृत पाता हूँ और उसके व्यवहारका स्मरण करके बार-बार प्रफुल्लित और हर्षसे गद्‌गद हो जाता हूँ ।'

धनी मित्रने बहाना करके कहा—'मैं बीमार रहता हूँ । मुझे मन्दाग्नि

हो रही है, इसीसे वैद्यने मुझे ये चीजे खानेको बता रखी हैं ।' इसपर उसने कहा कि 'प्रथम तो मन्दाग्निकी बीमारीमे ये चीजे खानेको दी नहीं जातीं और यदि ऐसा हो भी तो मुझे भी वे चीजें परसी जातीं तो क्या हानि थी ?'

धनी मित्रके पास कोई उत्तर नहीं था । वह अत्यन्त लज्जित होकर अपनी व्यवहार-विषमता तथा प्रेमहीनताके लिये मन-ही-मन पछताने लगा और सिर नीचा करके वहाँसे चल दिया ।

यह एक कल्पित दृष्टान्त है । इससे हमको यह सीखना चाहिये कि सबके साथ प्रेम और विनयसे युक्त त्याग तथा उदारताका बर्ताव करें । खान-पानादि व्यवहारमें पूर्ण समता रखें । इसका यह अर्थ नहीं कि विधर्मी और विजातीय पुरुषोंके साथ एक पंक्तिमें बैठकर उन-जैसा ही निषिद्ध आहार करें । भाव इतना ही है कि विधर्मी और विजातीय कोई भी क्यों न हो, सबको यथायोग्य शास्त्रानुकूल आदर-सत्कारपूर्वक, विनय और प्रेमपूर्वक बिना किसी भेद-भावके वही भोजन कराये, जो अपने लिये बनाया गया हो और पहले उनको भोजन कराके फिर स्वय भोजन करें । नीयत शुद्ध होनी चाहिये अर्थात् मनमे जरा भी वैषम्य नहीं होना चाहिये ।

ईश्वर दयालु और न्यायकारी है

सच्चिदानन्दघन अखिल विश्वेश्वर परमदयालु परमेश्वरकी सत्ताको स्वीकार करनेवाले प्राय सभी मतोंके लोग इस बातको स्वीकार करते हे कि ईश्वर दयालु और न्यायकारी है। ईश्वरमें केवल दयालुता या केवल न्यायकारिताका एकाङ्गी भाव नहीं है। उसमें ये दोनो ही गुण एक ही समय, एक ही साथ पूर्णरूपमे रहते हैं और वे जीवोके प्रति व्यवहार करनेमे दोनों ही भावोंमे एक ही साथ काम लेते हैं। इसपर कुछ लोग ऐसी शङ्का किया करते हैं कि 'न्याय और दया' दोनो गुण एक साथ कैसे रह सकते हैं? अदालतमे न्यायासनपर बैठा हुआ जज यदि दयाके वश होकर दण्डके योग्य वास्तविक अपराधी व्यक्तिको बिलकुल दण्ड न दे या उचितसे कम दे, तो क्या उसके न्यायमें कोई बाधा नहीं आती अथवा यदि वह अपराधीको पूरा दण्ड दे दे तो उसकी दया वहाँ क्या बिलकुल बेकार नहीं रह जाती? इसी प्रकार ईश्वरके लिये भी क्यों नहीं समझना चाहिये?'

इस शङ्काका उत्तर देना सहज काम नहीं है। परमात्माके गुणोंका विवेचन करना और उनपर टीका-टिप्पणी करना मुझ-जैसे मनुष्यके लिये तो निरा लडकपन ही है, परतु अपने चित्त-विनोदार्थ परमात्माके गुणगानकी भावनासे यत्किंचित् प्रयत्न किया जाता है। वास्तवमें मनुष्यकृत कानूनके साथ ईश्वरके कानूनकी समता कदापि नहीं की जा सकती। मनुष्य यदि स्वार्थसे कानून नहीं बनाता तो उसपर वातावरण और परिस्थितिका प्रभाव तो जरूर ही पडता है। भविष्यके विवेचनमें भी वह सर्वथा निर्मूल नहीं समझा जा सकता, आसक्ति या अन्य किसी कारणवश उसमे अन्यान्य प्रकारसे भी भूलके लिये गुंजाइश

रह सकती है, परतु ईश्वरमे भूलके लिये तनिक भी गुजाइश नहीं है । इसके सिवा ईश्वर दया, न्याय और उदारताकी अनन्त निधि होनेके कारण उसके कानूनमे भी दया, न्याय और उदारताकी बहुलता रहती है । सच्ची बात तो यह है कि जगत्को सत्य समझनेवाला मनुष्य स्वार्थहीन न होनेके कारण न्याय, दया और उदारतासे भरे कानून बना ही नहीं सकता । सब प्रकारसे स्वार्थरहित, सबके सुहृद्, दयाके समुद्र महापुरुष, जिनके सुहृदता, दया, प्रेम, वात्सल्य आदि गुणोकी थाह ही नहीं मिलती; भले ही वैसे नियम बना सकें, साधारण मनुष्योका तो यह काम नहीं है । अतएव यद्यपि मानवीय कानूनके साथ ईश्वरीय कानूनकी तुलना तो हो ही नहीं सकती, तथापि विचार करनेपर मनुष्योमे भी दया और न्याय दोनोका एक साथ रहना सिद्ध हो सकता है । इसके लिये कुछ कल्पित उदाहरण दिये जाते हैं ।

रामलाल नामक एक व्यापारीके दो हजार रुपये नारायणप्रसाद नामक कायस्थसे लेने थे । नारायणप्रसाद सच्चा और ईमानदार आदमी था, परतु कई तरहकी आपत्तियॉ आ जानेके कारण उसका सारा रोजगार नष्ट हो गया, घरकी सारी सम्पत्ति यहॉतक कि पत्नीके सुहागके गहने भी बिक गये और वह चालीस रुपये मासिकपर एक जगह नौकरी करने लगा । इतनी कम आमदनीमे बहुत ही मुश्किलसे उसके बडे कुटुम्बके पेटमे अनाज पहुँचता था, परतु चारो ओर फैली हुई बेकारीमे अधिककी कहीं गुजाइश ही नहीं थी । रामलालने रुपयोंके लिये तकाजा शुरू किया, परतु नारायणप्रसाद किसी तरह रुपये नहीं दे सका । रामलालने अदालतमे नालिश कर दी । जिस जजके सामने मुकदमा था, वह बडा ही नेक, कानूनका जानकार, न्यायकारी और दयालु था । नारायणप्रसादने जजकी सेवामें उपस्थित होकर कहा कि 'हुजूर ! मुझे सेठ रामलालके दो हजार रुपये जरूर देने हैं और मैं मरते दमतक उन्हे दूँगा, परतु इस समय मेरी बडी ही तग

हालत है, मेरे घरमे एक पैसा भी नहीं है, न कोई मिल्कियत ही है, आप भलीभाँति जाँच कर ले। मैं चालीस रुपये महीनेपर एक जगह नौकर हूँ, घरमें लडके-बच्चे मिलाकर सब आठ प्राणी हैं, उनकी गुजर वडी कठिनतासे होती है, तथापि मैं किसी तरह कष्ट सहकर भी दो सौ रुपये सालाना किस्तके हिसाबसे रामलालजीको दूँगा। इतनेपर भी रामलालजी मुझे बाध्य करेंगे और आप जेल भेजेंगे तो मैं जेल चला जाऊँगा, पर इन्साल्वेट (दिवालिया) नहीं होऊँगा, अवश्य ही उस हालतमें मेरे बाल-बच्चोंपर आफतका पहाड टूट पडेगा। हुजूरको जैसा अच्छा लगे वैसा ही करें।

नारायणप्रसादकी सच्ची वाते सुनकर जज प्रसन्न हो गया। उसने कहा—'भाई! तुम अपने महाजनको समझा-बुझाकर ठीक कर लो, तुम्हारी ऐसी हालतपर उसे जरूर तुम्हारी शर्त मान लेनी चाहिये।' नारायणप्रसादने रामलालको बहुत समझाया, बहुत विनय-प्रार्थना की, परतु रामलालने कहा कि 'मैं किसी तरह नहीं मानूँगा।' अदालतमे मामला पेश हुआ, रामलालके दो हजार रुपये नारायणप्रसादको देने हैं, यह साबित हो गया। जजने जाँच करके इस बातका पता लगा लिया कि नारायणप्रसोदने अपनी जो हालत बतलायी थी, अक्षरश सत्य है। स्वय रामलालने इस बातको मजूर किया। इसपर रामलालके मना करनेपर भी जजने नारायणप्रसादके कथनानुसार दो सौ रुपये सालानाकी किश्त करके उसपर दो हजारकी डिग्री दे दी। जजकी दयालुता देखकर नारायणप्रसाद विह्वल हो गया। क्या इस फैसलेमें जज अन्यायी समझा जायगा? क्या उसका यह काम रिश्वतखोरीका माना जायगा और क्या इसमें दयालुता नहीं मानी जायगी? इसमें दया और न्याय दोनों ही हैं। जब यहाँके कानूनमें ऐसा होता है, तब श्रीभगवान् अपने भक्तको उसके इच्छानुसार फैसला दे दें तो क्या इसमें उनकी दयालुता या न्यायमें दोष आता है?

अब फौजदारीके दो उदाहरण देखिये—

गोविन्दराम और रामप्रसाद एक ही मुहल्लेमें रहते थे। वे आपसमे सदा ही तर्क-वितर्क किया करते । तर्कमें लडाईका डर रहता ही है। एक दिन परस्पर शास्त्रार्थमें रामप्रसादको अपने विपरीत सिद्धान्त सुनकर गुस्सा आ गया। क्रोधमे मनुष्यकी बुद्धि मारी जाती है, अत उसने दो-चार हाथ जोरसे गोविन्दरामपर जमा दिये। गोविन्दरामने उसपर फौजदारी दावा कर दिया। रामप्रसादको इस बातका पता लगते ही उसने मजिस्ट्रेटकी सेवामें जाकर सारी बाते सच-सच कह दी। उसने कहा कि 'हमलोग धर्मके सम्बन्धमें आपसमें विवाद कर रहे थे, गोविन्दरामने मुझे न्याययुक्त ही फटकारा था। परतु अपने मनके बहुत विपरीत होनेसे मुझे गुस्सा आ ही गया, जिससे मेरे द्वारा यह अपराध बन गया। जो कुछ दोष है, सो वास्तवमें मेरा ही है। मुझे अपनी करनीपर बड़ा ही पश्चात्ताप है, अब आप जो कुछ आज्ञा करे, वही करनेको मैं तैयार हूँ।' मजिस्ट्रेटने कहा कि 'भाई! मैं इसमें कुछ भी नहीं कर सकता, तुम गोविन्दरामके पास जाकर उससे क्षमा-प्रार्थना करो, वह चाहे तो तुम्हे क्षमा कर सकता है, तुम्हारे लिये यही सबसे सरल उपाय है।' मजिस्ट्रेटकी बात सुनकर रामप्रसाद गोविन्दरामके घर गया और उसके चरणोंमें पडकर अपना दोष स्वीकार करते हुए क्षमा-प्रार्थना की और कहा कि 'अब मैं आपकी चरण-शरणमें आ पडा हूँ, मैं जरूर अपराधी हूँ, पर मुझे छोड़ना पडेगा।' उसकी अनुनय-विनय सुनकर और उसके हृदयमें सच्चा पश्चात्ताप देखकर गोविन्दराम राजी हो गया और उसने मुकदमा उठानेकी दरखास्त दे दी। मजिस्ट्रेटने दरखास्त मजूर करके रामप्रसादको बेदाग छोड दिया। क्या इसमे कोई भी मनुष्य यह कह सकता है कि गोविन्दराम या मजिस्ट्रेटने कोई अन्याय किया या उन्होंने दया नहीं की? एक समय भक्त अम्बरीषका अपराध करनेपर

दुर्वासा मुनिको भगवान् श्रीविष्णुने भी उसीकी शरणमें भेजा था, वहाँ जानेपर अम्बरीषने चक्रसे विनय करके उनके प्राण बचा दिये थे। दया और न्याय दोनों ही क्रियाएँ साथ-साथ सम्पन्न हुईं।

शिवराम नामक एक भले स्वभावका सदाचारी मनुष्य एक गाँवमें रहता था, उसी गाँवमें एक डाकूका घर था। शिवराम कभी-कभी उससे डकैतीकी घटनाएँ सुनता था। कुसङ्गका फल बहुत बुरा होता है। शिवरामका मन एक दिन ललचाया। लोभने उसकी बुद्धि बिगाड दी, परिणाम, ज्ञान-शून्य होकर वह नन्दराम नामक गृहस्थके घर डाका डालकर तीन हजार रुपये नकद और कुछ गहने लूट लाया। आत्मरक्षाके लिये रोकनेवालोंपर दो-चार लाठियाँ भी जमा दीं।

धन लेकर घर पहुँचा और अपनी स्त्रीसे सारा हाल कहा। शिवरामकी पत्नी बडी साध्वी थी, उसे स्वामीके इस कृत्यको सुनकर बडा दुःख हुआ। उसने चरणोंमें सिर टेककर स्वामीको धर्म सुझाया और प्रार्थना की कि यह धन अभी आप लौटा दीजिये। शिवराम वास्तवमें अच्छा आदमी था, वह डकैती पेशावाला तो था ही नहीं, कुसङ्गसे उसकी बुद्धि नष्ट हो गयी थी। स्त्रीके समझानेपर उसे अपना अपराध दीपककी ज्योतिकी भाँति स्पष्ट दीखने लगा। पत्नीकी सलाहसे वह तुरत धन लेकर कलक्टर साहेबके बँगलेपर गया और रुपये तथा गहने उसके पास रखकर आत्मसमर्पण करते हुए उसने गिडगिडाकर कहा कि 'मुझसे बडा भारी अपराध हो गया, कुसङ्गसे मेरे मनमें लोभ पैदा हो गया था, जिससे मेरी मति मारी गयी। मैंने बेचारे नन्दरामको अन्यायरूपसे सताया और वह कुकर्म किया, जो मेरे बाप-दादोंमे किसीने भी नहीं किया था। मेरा अपराध किसी प्रकार क्षम्य तो नहीं है, परतु मैं आपकी शरण हूँ, आप मुझे बचाइये। भविष्यमें मैं कभी ऐसा कुकर्म नहीं करूँगा।' कलक्टरको उसकी बातपर विश्वास हो गया, उसने सोचा कि यदि इसकी नीयत

खराब होती तो माल लेकर हाजिर क्यो होता। कलक्टरने उसे वहीं रोककर पुलिसके द्वारा नन्दरामको बुलवाया। नन्दराम पुलिसमें इत्तला करने जा ही रहा था कि उसको एक कान्स्टेबलने आकर कहा—'तुम्हारे घर जिसने डकैती की है, वह मालसमेत कलक्टर साहेबके बॅगलेपर हाजिर है, साहेबने तुम्हें अभी बुलाया है।' माल मिलनेकी बात सुनते ही नन्दरामको बडी खुशी हुई और वह तुरत ही सिपाहीके साथ साहेबके बॅगलेपर जा पहुॅचा। उसे देखकर शिवरामने उसके चरण पकड लिये और अपना अपराध क्षमा करनेके लिये रो-रोकर प्रार्थना करने लगा। नन्दरामने उसकी एक भी नहीं सुनी और कहा कि 'तुझे जेल भिजवाये बिना मैं कभी न छोडूँगा।' मामला कोर्ट में गया। कलक्टर साहेबके पूछनेपर शिवरामने वे ही बाते साफ-साफ कह दीं, जो उसने बॅगलेपर कही थीं, इसपर साहेबने नन्दरामसे पूछा कि 'बताओ, इसके चाल-चलनके सम्बन्धमें तुम्हारा क्या ख्याल है?' नन्दरामको स्वीकार करना पडा कि 'मैं इसे जानता हूँ, यह अच्छे घरानेका लडका है, डाकुओंकी सगतिसे इसे दुर्बुद्धि पैदा हुई होगी। परंतु इसे सजा जरूर मिलनी चाहिये, नहीं तो यह फिर ऐसे ही काम करेगा।' कलक्टर दयालु था, वह शिवरामकी सरलता और सत्यतापर मुग्ध हो गया और उसने भविष्यके लिये सावधान करके शिवरामको छोड दिया। इस प्रकार दया करनेवाला कलक्टर क्या अन्यायी समझा जायगा? इसी प्रकार सच्चे और सरल हृदयसे भगवान्‌की शरण होनेपर वे भी मुक्त कर देते हैं।

यहॉपर यह प्रश्न उठ सकता है, ये सब उदाहरण तो साधारण अपराधोंके हैं। खून आदिके मामलेमें विपक्षके लोग राजी हो जायँ तो भी न्यायकारी जज अपराधीको नहीं छोड सकता, यदि छोड़ देता है तो वह अवश्य ही अन्यायी समझा जाता है। इसका उत्तर देनेसे पूर्व यह समझना चाहिये, खून या मनुष्य-वध तीन प्रकारसे किया

जाता है—न्यायके लिये, भूलसे या जानबूझकर अन्यायसे । न्यायके लिये किया जानेवाला मनुष्यवध तो खूनके अपराधमें गिना ही नहीं जाता । नि स्वार्थभावसे धर्मकी रक्षाके लिये, लोकहितके लिये, न्याय-रक्षाके लिये या आत्मरक्षाके लिये जो नर-वध होते हैं, उनमे तो मारनेवाला दण्डनीय ही नहीं होता । अपराधीको न्याययुक्त फॉसीकी सजा देनेवाले जज या फॉसीकी सजा पाये हुए मनुष्यको फॉसीपर लटकानेवाले जल्लादको कोई अपराधी नहीं मानता । यथार्थमें डाकुओसे धन-प्राणको बचानेके लिये उनपर शस्त्र-प्रहार करनेवाला भी पुरस्कारका पात्र समझा जाता है । हालमे बगाली युवतीने बुरी नीयतसे घरमें घुसकर आनेवाले एक नौजवानको मार डाला था । वह पकडी गयी, परतु कोर्टने उसके कार्यकी प्रशसा करते हुए उसे छोड दिया । अवश्य ही मनुष्यके न्यायमे इस गलतीके लिये गुजाइश रह सकती है कि वह किसी स्थलमे न्यायानुकूल कर्म करनेवालेको भी दण्डनीय समझ ले, परतु अन्तर्यामी सर्वतश्चक्षु परमात्माके यहॉ तो ऐसी भूलकी कोई सम्भावना ही नहीं ।

दूसरे प्रकारका खून भूलसे होता है । ऐसे खूनका अपराधी कसूरवार तो समझा जाता है, क्योंकि उसकी असावधानीसे ही नरहत्या होती है । ऐसा अपराधी चेष्टा करनेपर छूट जाता है, या कोशिशकी कमीसे उसे कुछ सजा भी हो सकती है ।

तीसरे प्रकारका खून क्रोध, लोभ, वैर आदिके कारण जानबूझकर किया जाता है, ऐसा अपराधी कसूर साबित होनेपर यहॉके कानूनके अनुसार प्राय न्यायालयसे नहीं छूट सकता ।

इनमे पहलेके उदाहरण तो दिये जा चुके हैं, ऐसे और भी अनेक उदाहरण मिल सकते हैं । श्रीखड्गबहादुर नामक नैपाली युवकने अत्याचारी हीरालाल अग्रवालको मार डाला था, उसे हल्का दण्ड भी हो गया था, परतु लोगोके कहनेपर वाइसरायने छोड दिया ।

दूसरेके लिये निम्नलिखित उदाहरण दिया जाता है—

राजपूतानेके एक गाँवका रामसिह नामक एक राजपूत नवयुवक जगलमे पहाडीके नीचे निशाना मारना सीख रहा था, पास ही उसका मित्र सजनसिह खडा था । निशानेपर मारनेके लिये वह बदूकका घोडा दबा ही रहा था कि सामनेसे एक आदमी जाता दिखलायी पडा, उसको बचानेके लिये उसने हाथ घुमाया, घोडा दब गया और गोली छूटकर पास खडे सजनसिहके हृदयको चीरकर पार हो गयी । वह धडामसे गिर पडा । रामसिहके होश हवा हो गये । पुलिस आयी । रामसिह खूनके अपराधमे पकडा गया, एक तो उसे अपने हाथसे मित्रके मरनेका दु:ख था और दूसरा यह राजसकट । बेचारेकी बडी ही दुर्दशा थी । कोर्टमें मामला पेश हुआ । रामसिहने सारी घटना सच-सच सुनाकर दु ख प्रकट करते हुए क्षमा माँगी । हाकिमने सजनसिहके घरवालोंसे पूछा कि 'आपलोग सच कहे कि आपकी समझसे रामसिहकी नीयतमें कोई दोष था या नही ? यह जिस गलतीको बता रहा है, उसके सम्बन्धमें आपलोगोकी क्या धारणा है ?' उन लोगोने कहा कि 'हमलोग भी इस बातपर तो विश्वास करते हैं कि इसकी नीयत सजनसिहको मारनेकी नहीं थी, वह इसका मित्र भी था, हमलोग भी उस समय वहीं उपस्थित थे । परतु इसकी असावधानीसे वह मारा गया, अतएव इसे दण्ड अवश्य मिलना चाहिये ।' हाकिमने उसकी नीयत और सत्यतापर विश्वास कर आगेके लिये सतर्क करते हुए उसे बेदाग छोड दिया । क्या इस प्रकार दया करनेवाले हाकिमको कोई अन्यायी कह सकता है ? जब मनुष्य भी इस तरह दया और न्यायका बर्ताव एक साथ कर सकता है, तब शरण जानेपर न्यायकी रक्षा करते हुए ही परमात्मा उसके अपराधोंको क्षमा कर दें, इसमे क्या आश्चर्य है ?

इस उदाहरणपर एक प्राचीन गाथाका स्मरण हो आता है, जिसमें भूलसे अपराध करनेवाले परम धार्मिक पुरुषको दण्ड भोगना पडा

था। इतिहास महाराज दशरथका है, जिनके हाथसे मातृ-पितृभक्त श्रवणकुमार मारा गया था। इस इतिहासको लेकर लोग प्रश्न किया करते हैं कि जब महाराज दशरथका भूलसे किया हुआ अपराध क्षमा नहीं हुआ, तब यह कैसे माना जा सकता है कि भूलसे किये हुए अपराधीका अपराध क्षमा हो जाता है?' इस शङ्काका उत्तर इतिहाससहित इस प्रकार है—

महाराज दशरथ एक समय रातको वनमें हिंसक पशुओंके शिकारके लिये गये थे। एक जगह उन्होने नदीमें हाथीकी गर्जना-सा शब्द सुनकर तीक्ष्ण शब्दवेधी बाण मारा। उसी क्षण किसीके कराहनेकी स्पष्ट आवाज आयी और ये शब्द सुने कि 'अरे! मुझ निर्दोष तपस्वीको बिना अपराध किसने मारा? मैंने किसीकी क्या बुराई की थी, जो इस प्रकार मुझे मार डाला। अब मेरे बूढे माँ-बापकी कौन सेवा करेगा? उन्हे कौन खिलाये-पिलायेगा।' इन दयनीय शब्दोंको सुनकर दशरथके हृदयमें बड़ी व्यथा हुई। उन्होंने घबराये हुए दौडकर नदी-तीरपर आकर देखा तो एक जटाधारी तपस्वी ऋषि खूनसे लथपथ पडे हैं। दशरथके क्षमा-प्रार्थना करनेपर ऋषिने कहा कि 'मेरे अंधे माँ-बाप प्यासे हैं, मैं उनके लिये जल भरने आया था, घडा भरनेमें शब्द हुआ, इसीपर तुमने बाण मार दिया। मेरे माता-पिता मेरी बाट देखते होंगे, जाकर उन्हें यह वृत्तान्त कहो, उनको प्रसन्न करो, जिससे वे तुम्हें शाप न दे दे। मेरे शरीरसे बाण निकाल दो, मुझे बडी पीड़ा हो रही है। तुम्हें ब्रह्महत्याका पाप नहीं लगेगा, क्योंकि मैं श्रवणकुमार नामक वैश्य हूँ।' इसपर दशरथजीने उनका बाण निकाला और उसके निकलते ही श्रवणके प्राण निकल गये। राजा जल लेकर श्रवणके माता-पिताके पास गये। वे पुत्रकी प्रतीक्षा कर रहे थे, पैरोकी आहट सुनकर उन्होंने देरसे आनेका कारण पूछा।

दशरथने अपना नाम-पता बताकर बड़ी ही विनयके साथ सारा हाल उन्हें सुनाया और जल पीनेके लिये प्रार्थना की। बूढ़े दम्पति एक बार मूर्च्छित हो गये, फिर होशमे आकर कहने लगे—'राजन्! अपना यह अशुभ कर्म तुम स्वय आकर हमसे न कहते तो तुम्हारे सिरके हजारो टुकड़े हो गये होते। तुमने भूलसे यह कार्य किया है, कहीं जान-बूझकर करते तो समस्त रघुकुल ही नष्ट हो जाता। अब हम दोनोंको भी वहाँ ले चलो।' दशरथ दोनोंको वहाँ ले गये। वे दोनों पुत्रके शरीरको स्पर्श करके वहीं गिर पडे और भाँति-भाँतिसे विलाप करने लगे। दु खी ऋषिने मरते समय कहा—'दशरथ! जैसे मैं आज पुत्रवियोगके दु खसे मर रहा हूँ, वैसे ही तुम्हारी मृत्यु भी पुत्र-वियोगके शोकसे ही होगी।' इतना कहकर वे दोनों भी परलोक सिधार गये।

तदनन्तर राजाने यज्ञ किया, जिसके फलस्वरूप उनके श्रीराम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न—ये चार पुत्र हुए। श्रीरामको वनवास हुआ और इसी पुत्रवियोगके कारण ही राजाकी मृत्यु हुई। यह इतिहास वाल्मीकि-रामायण २।६३ में है। इससे सिद्ध होता है कि राजाको दण्ड अवश्य मिला, परतु यह दण्ड वास्तवमे बहुत ही अल्प था। पुत्र वनवासी ही हुए, न कि श्रवणकी भाँति उनका चिर-वियोग हो गया। हमारी समझसे यदि राजा दशरथ विशेष चेष्टा करते तो सम्भवत यह दण्ड भी क्षमा हो सकता था। राजाकी व्याकुल दशाको देखकर श्रवणने तो अपनी ओरसे उन्हें क्षमा ही कर दिया था और माता-पिताको समझानेके लिये भेजा था। इसी प्रकार श्रवणके माता-पिताकी विशेष दया हो जाती तो वहाँसे भी दशरथजी बेदाग छूट सकते थे। उन्होने जितनी कोशिश की, उतना ही कार्य हुआ। कोशिश करना भी प्रायश्चित्त ही है। सम्भव है, महाराज दशरथ उस समय परमेश्वरसे विशेष प्रार्थना करते और ईश्वर चाहते तो

श्रवणकुमारके पिताकी बुद्धिमे पवित्रता और दयाका सचार करके उनके द्वारा दशरथको क्षमा करवा देते । यदि ऐसा होता तो ईश्वरके न्यायमे कोई भी दोष नहीं समझा जाता। बात तो यह है कि मनुष्यके द्वारा कैसा भी अपराध क्यो न बन जाय, ईश्वरकी शरण होकर उसके अनुकूल प्रायश्चित्तादि उपाय करनेसे, बिना ही भोग किये उसके पाप क्षमा हो सकते हैं । प्रायश्चित्त आदि उपायोंसे भी फलभोगके समान ही पापोंका नाश हो जाता है, क्योंकि प्रायश्चित्त भी एक प्रकारसे भोग ही है ।

अवश्य ही वर्तमान कालके कानूनमे तीसरे प्रकारके जानबूझकर बुरी नीयतसे किये हुए खूनके लिये दयाका ऐसा प्रयोग नही मिल सकता, जिसका उदाहरण देकर ईश्वरकी दया समझायी जा सके, परतु इतना तो सभीको मानना होगा कि सच्चे न्यायकारी, प्रजाहितैपी राजाका उद्देश्य भी तो दण्डके कानून बनाने और तदनुसार दण्ड देनेमे अपराधीपर दया करना ही होता है । न्यायी राजा अपराधीको दण्ड देकर उसे शिक्षा देना और उसका सुधार करना चाहता है, द्वेषसे उसे दु ख पहुँचाना और अकारण ही उसकी हत्या करना नहीं चाहता । हत्याका उद्देश्य तो द्वेषपूर्ण और प्रतिहिंसा वृत्तिवाले मनुष्यका ही हो सकता है । इतना होनेपर भी न्यायपरायण राजाकी तुलना ईश्वरके साथ कदापि नहीं की जा सकती । ईश्वरका कानून दया, सुहृदता और जीवोंके हितसे पूर्ण होता है । हमलोग तो उसकी कल्पनातक भी नहीं कर सकते ।

ईश्वरका दण्ड भी करके सदृश होता है । ईश्वरके न्यायसे फरियादी और असामी दोनोका ही परिणाममें हित और उद्धार होता है, यही उसकी विशेषता है । परम दयालु परमात्माके कानूनके अनुसार जो अपराधी अपनी भूलको सच्चे दिलसे स्वीकार करता हुआ भविष्यमें फिर अपराध न करनेकी प्रतिज्ञा करता है और सच्चे हृदयसे ईश्वरकी

शरण होकर सर्वस्वसहित अपनेको उसके चरणोमे अर्पण कर देता है एव ईश्वरकी कडी-से-कडी आज्ञाको उसके भयानकसे-भयानक विधानको, उसके प्रत्येक न्यायको सानन्द स्वीकार करता तथा उसे पुरस्कार समझता है, साथ ही अपने किये हुए अपराधोके लिये क्षमा नहीं चाहकर दण्ड ग्रहण करनेमें खुश होता है, ऐसे सरलभावसे सर्वस्व अर्पण करनेवाले शरणागत भक्तको भगवान् अपराधोंसे मुक्त करके उसे अभय कर देते हैं। इसमें दयालु ईश्वरका न्याय ही सिद्ध होता है। ऐसे भाववाले भक्तको दण्डसे मुक्त करना ही परमात्माके राज्यका दया और न्यायपूर्ण नियम है। इसीसे भगवान्‌मे दया और न्याय—दोनों एक ही साथ रहते हैं। श्रीगीताजीमें भगवान् स्पष्ट कहते हैं—

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्य. सम्यग्व्यवसितो हि स.॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्ति निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्त. प्रणश्यति॥
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरण व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(९।३०-३१,१८।६६)

'यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभावसे मेरा भक्त हुआ मुझको निरन्तर भजता है, वह साधु ही मानने योग्य है, क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है। उसने भलीभाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वरके भजनके समान अन्य कुछ भी नही है। अतएव वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली परम शान्तिको प्राप्त होता है। हे अर्जुन। तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त (कदापि) नष्ट नहीं होता। इसलिये सब कर्मोंके आश्रयको त्यागकर केवल एक मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेव परमात्माकी ही अनन्य शरणको प्राप्त हो, मैं तुझे समस्त पापोसे मुक्त कर दूँगा, तू शोक न कर।'

—०—